* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

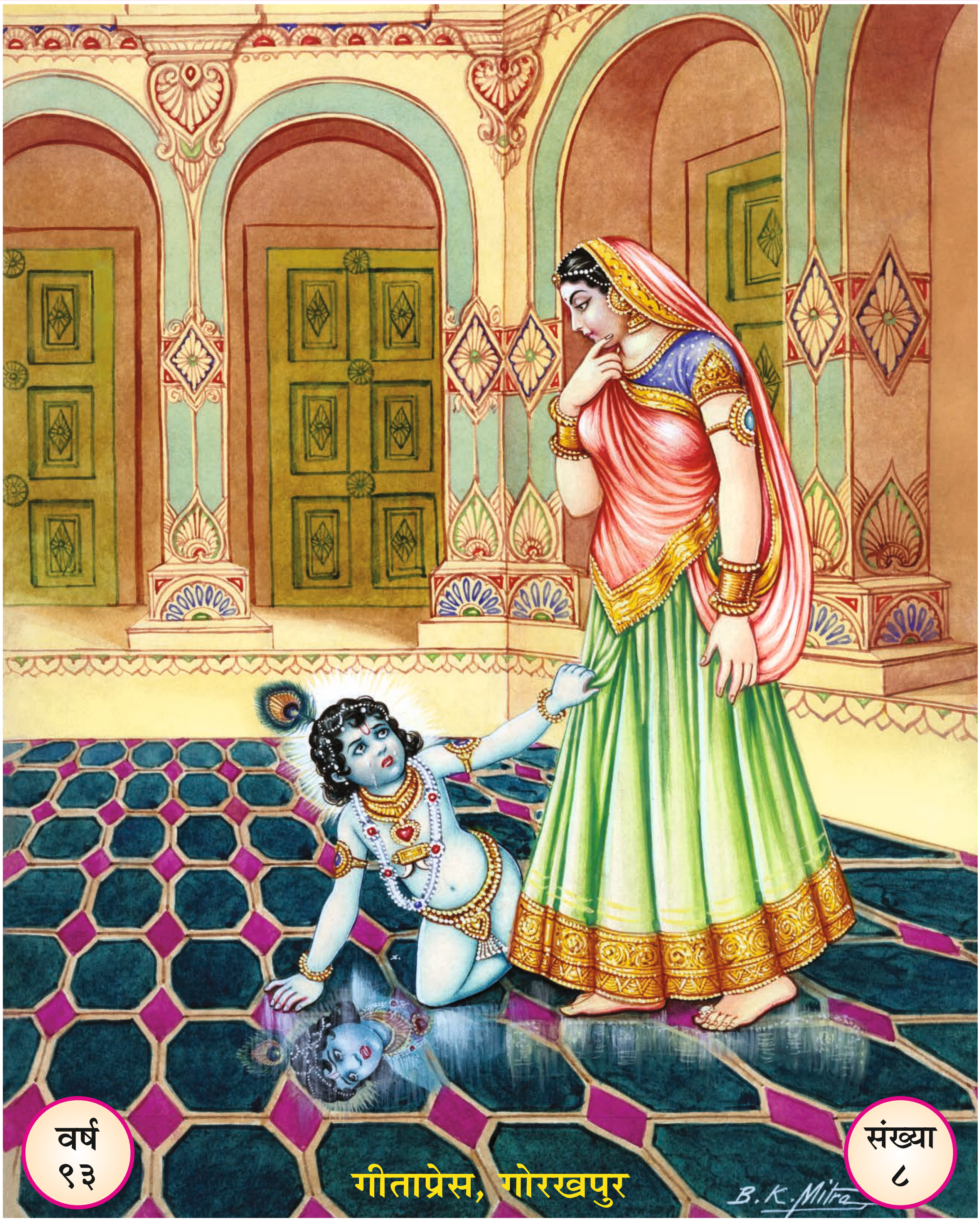

लीलामयका रुदन-नाट्य

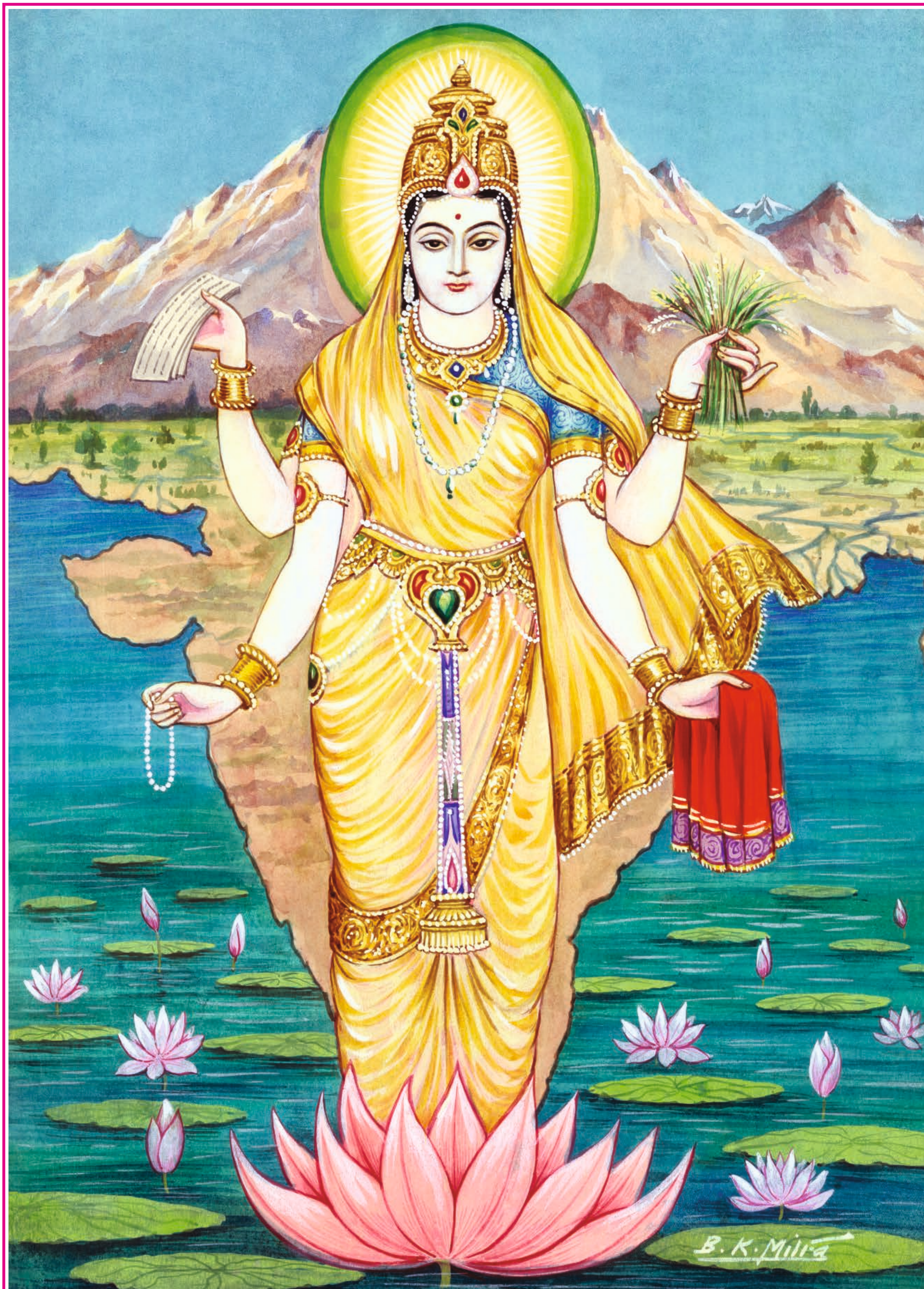

भारतमाता

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

पंचांग-पूजन-पद्धति [कुशकण्डिका-होमविधिसहित] (कोड 2228)—प्रस्तुत पुस्तकमें पंचांग-पूजन कर्मके अन्तर्गत मुख्यरूपसे कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, रक्षाविधान, नवग्रहपूजन तथा नान्दीमुख श्राद्ध—इन पाँच प्रधान कर्मोंका विवेचन किया गया है। इसमें मन्त्रभाग संस्कृतमें हैं और निर्देश हिन्दीमें हैं। इसमें वैदिक मन्त्रोंके साथ-साथ पौराणिक मन्त्र भी दिये गये हैं। इस पुस्तकमें परिशिष्टके अन्तर्गत सुविधाकी दृष्टिसे कुशकण्डिकासहित होमविधि इत्यादि विषयोंका भी समावेश किया गया है।

आशा है, यह पुस्तक विद्वज्जनोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। मूल्य ₹२०

देवीभागवत-कथासार [श्रीमद्देवीभागवत—एक सिंहावलोकन] (कोड 2226)—बारह स्कन्धोंमें विभक्त श्रीमद्देवीभागवतमें मुख्यरूपसे भगवतीकी लीलाकथाओंका प्रतिपादन किया गया है। कल्याणके विशेषांकके रूपमें विगत दो वर्षोंमें प्रकाशित श्रीमद्देवीभागवत—एक सिंहावलोकनमें श्रीमद्देवीभागवतके कथासारका निरूपण किया गया है। उसी कथासारको प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹२०

लिङ्गमहापुराण [गुजराती, ग्रन्थाकार] (कोड 2227)—गुजराती भाषामें पहली बार प्रकाशित इस महापुराणमें शैवदर्शन, पाशुपतयोग, लिङ्गार्चन, लिङ्ग-माहात्म्य एवं शिव भक्तोंकी कथाओंका सरस वर्णन है। मूल्य ₹२४०

कोड	पुस्तक	भाषा	मू० ₹
2209	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-मूल	(तेलुगु)	२८०
2230	श्रीललितासहस्रनामस्तोत्रमु (भावार्थमुलु)	(तेलुगु)	३०
2229	श्रीदुर्गासप्तशती	(नेपाली)	३५
2231	एक संतकी वसीयत	(,,)	४
2232	नित्य स्तुति और प्रार्थना	(नेपाली)	५
2233	सच्चा गुरु कौन ?	(,,)	५

कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[१४ सितम्बरसे पितृपक्ष (महालय) आरम्भ हो रहा है।]

नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [सजिल्द] (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹७० गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश [ग्रन्थाकार] (कोड 1593)—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹१४५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹४०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹३५

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹१६

जीवच्छ्राद्ध-पद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹७०

प्र० ति० 20-07-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2017–2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR–03/2017–2019

शारदीय 'नवरात्र' २९ सितम्बरसे प्रारम्भ हो रहा है

श्रीदुर्गासप्तशतीके उपलब्ध संस्करण—मँगानेमें शीघ्रता करें।

श्रीदुर्गासप्तशती हिन्दू-धर्मका सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें भगवतीकी कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ अनेक गूढ़ रहस्य भरे हैं। सकाम भक्त इस ग्रन्थका श्रद्धापूर्वक पाठ करके कामनासिद्धि तथा निष्काम भक्त दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस पुस्तकमें पाठ करनेकी प्रामाणिक विधि, कवच, अर्गला, कीलक, वैदिक-तान्त्रिक रात्रिसूक्त, देव्यथर्वशीर्ष, नवार्णविधि, मूल पाठ, दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, श्रीदुर्गामानसपूजा, तीनों रहस्य, क्षमा-प्रार्थना, सिद्धकुञ्जिकास्तोत्र, पाठके विभिन्न प्रयोग तथा आरती दी गयी है। विभिन्न दृष्टियोंसे यह पुस्तक सबके लिये उपयोगी है।

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	**मूल,** मोटा टाइप (बेड़िआ) (तेलुगु, कन्नड़, मलयालम भी)	५०
876	**मूल,** गुटका	१५
1346	**सानुवाद,** मोटा टाइप	४०
1281	**सानुवाद** (वि० सं०)	५५
118	**सानुवाद,** सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ, तेलुगु भी)	३५
489	**सानुवाद,** सजिल्द, गुजराती भी	५०
866	**केवल हिन्दी**	२२
1161	” ” मोटा टाइप, सजिल्द	५५

दुर्गाचालीसा एवं विन्ध्येश्वरी-चालीसा (अनेक आकार-प्रकारमें)

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण [सटीक] (कोड 1897, 1898) ग्रन्थाकार—श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण भगवतीकी विस्तृत महिमाके परिचायक होनेके साथ-साथ एक आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। इसके पारायण और अनुष्ठानसे लौकिक, पारलौकिक लाभके साथ भगवतीकी कृपा प्राप्त होती है। इसे दो खण्डोंमें सरल हिन्दी-व्याख्यासहित प्रकाशित किया गया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹४८०, **(कोड 1133)** सं० केवल हिन्दी मोटा टाइप मूल्य ₹२६५, **(कोड 1770)** मूलमात्रम्, मूल्य ₹१८५

शक्ति-अङ्क (कोड 41) ग्रन्थाकार—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासनापद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। मूल्य ₹२००

महाभागवत (देवीपुराण) [सटीक, सचित्र, सजिल्द] (कोड 1610) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें मुख्य रूपसे भगवती महाशक्तिके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चरित्रोंका विस्तृत वर्णन है। इसमें मूल प्रकृति भगवतीके गङ्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके मनोरम आख्यान हैं। मूल्य ₹१३०

देवीस्तोत्ररत्नाकर (कोड 1774) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें भगवती महाशक्तिके उपासकोंके लिये देवीके अनेक स्वरूपोंके उपासनार्थ चुने हुए विभिन्न स्तोत्रोंका अनुपम संकलन किया गया है। मूल्य ₹४०

शक्तिपीठ-दर्शन (कोड 2003)—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवतीके ५१ शक्तिपीठोंके इतिहास और रहस्यका विस्तृत वर्णन है। मूल्य ₹२०

२५वाँ दिल्ली पुस्तक-मेला सन् २०१९—इस वर्ष भी प्रगति मैदान, नयी दिल्लीमें **(दिनाङ्क ११ सितम्बरसे १५ सितम्बर २०१९ तक)** आयोजित दिल्ली पुस्तक-मेलामें गीताप्रेसद्वारा एक भव्य पुस्तक-स्टॉल लगाकर विभिन्न भारतीय भाषाओंमें प्रकाशित अपने प्रकाशनोंके प्रदर्शन एवं बिक्रीकी व्यवस्था करनेका प्रयास है।

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
gitapressbookshop.in से गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online कूरियरसे/डाकसे मँगवायें।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

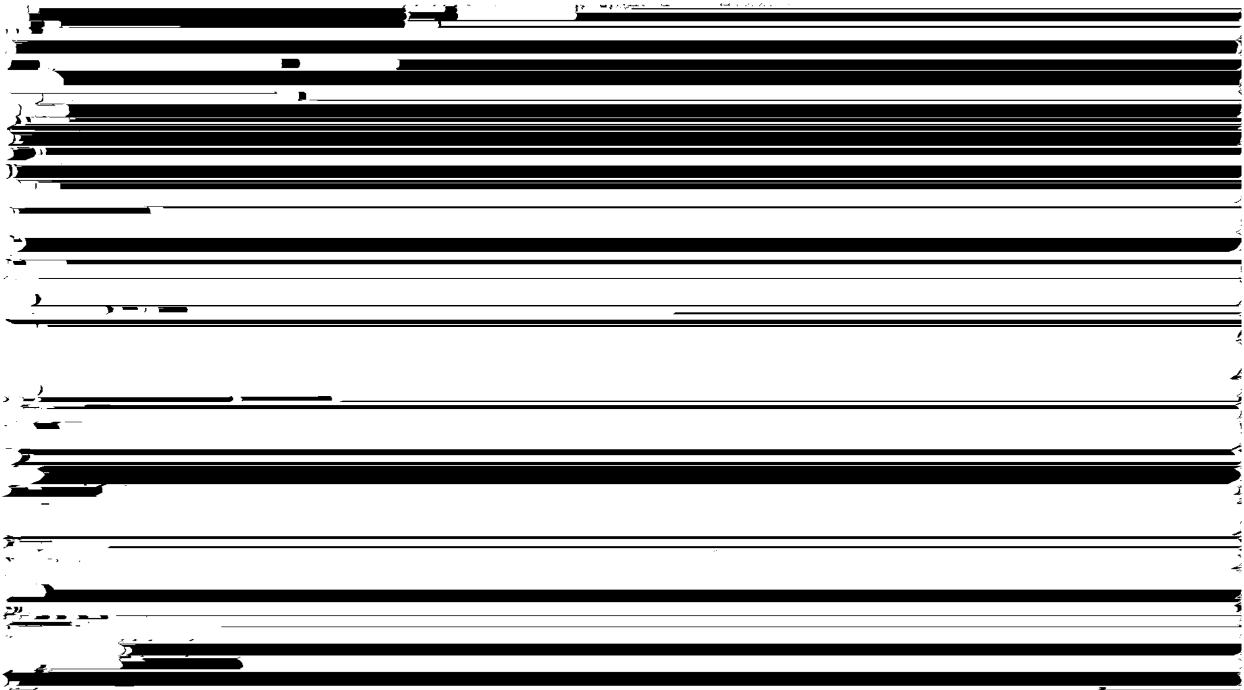

कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अगस्त २०१९ ई०

संख्या ८

पूर्ण संख्या १११३

भारतभूमिकी महिमा

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
कर्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति॥
जानीम नैतत्क्व वयं विलीने स्वर्गप्रदे कर्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्या ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः॥

देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि ‘जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं। जो लोग इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर अपने फलाकांक्षासे रहित कर्मोंको परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुभगवान्‌को अर्पण करनेसे निर्मल (पापपुण्यसे रहित) होकर उन अनन्तमें ही लीन हो जाते हैं, [वे धन्य हैं!]। पता नहीं, अपने स्वर्गप्रदकर्मोंका क्षय होनेपर हम कहाँ जन्म ग्रहण करेंगे! धन्य तो वे ही मनुष्य हैं, जो भारतभूमिमें उत्पन्न होकर इन्द्रियोंकी शक्तिसे हीन नहीं हुए हैं।’ **[श्रीविष्णुपुराण]**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, अगस्त २०१९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भारतभूमिकी महिमा	३
२- कल्याण	५
३- लीलामयका रुदन-नाट्य [आवरणचित्र-परिचय]	६
४- विवाहित स्त्रियोंके कर्तव्य (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- श्रीराम-निर्भरा भक्ति (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)	१०
६- भगवत्कृपापर विश्वास कीजिये (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
७- 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' (स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके कतिपय प्रवचनोंके आधारपर) [प्रेषक—श्रीशरदचन्द्रजी श्रोत्रिय]	१३
८- भगवान् क्रूर कैसे हो सकता है?	१४
९- भगवद्भक्तिका रहस्य [साधकोंके प्रति—] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
१०- 'प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान' (श्रीअर्जुनकुमारजी बन्सल)	१८
११- सत्यका मूल्य	२०
१२- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)	२१
१३- विश्वम्भर सबको सँभालता है [प्रेरक-प्रसंग]	२२
१४- असफलताकी कड़वाहटमें (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ)	२३
१५- वेदोंके महावाक्य (डॉ० श्री के०डी० शर्मा)	२५
१६- जरूरतमन्दकी मदद	२८
१७- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	२९
१८- प्रेम ही सर्वोपरि तत्त्व है (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	३०
१९- बच्चोंके संस्कारपर बड़ोंके व्यवहारका प्रभाव (श्रीसीतारामजी गुप्ता)	३२
२०- साधकोपयोगी उपदेशामृत [व्रजभाषामें] (गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज)	३४
२१- यह धन मातृभूमिके लिये है	३५
२२- निन्दा महापाप (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	३६
२३- मौन व्याख्यान	३८
२४- दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजी महाराज [संत-चरित] (श्रीआगेरामजी शास्त्री)	३९
२५- परिस्थितिका सदुपयोग [प्रेरणा-पथ] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	४१
२६- गो-महिमा	४२
२७- साधनोपयोगी पत्र	४३
२८- व्रतोत्सव-पर्व [भाद्रपदमासके व्रत-पर्व]	४५
२९- कृपानुभूति	४६
३०- पढ़ो, समझो और करो	४७
३१- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- लीलामयका रुदन-नाट्य	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भारतमाता	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- लीलामयका रुदन-नाट्य	(इकरंगा)	६
४- मदालसाका अपने पुत्रोंको उपदेश	(,,)	८

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—संसारके भोगोंमें सुख है ही नहीं, जो वस्तु जहाँ नहीं है, वह वहाँ कैसे मिलेगी? ढूँढ़ते रहो, दर-दर भटकते रहो, सिर पटकते रहो सर्वत्र और सदा; अन्तमें निराशा, निर्वेद और व्यथाके ही थपेड़े लगेंगे। सच्चा और स्थायी सुख तो है—भगवान्‌में और उन भगवान्‌की प्राप्ति होती है त्यागसे।

याद रखो—जो पुरुष त्यागसे प्राप्त होनेवाले निर्मल सुखका अनुभव करता है, वह भोगोंकी ओर कभी आँख उठाकर देखता ही नहीं। हाँ, भोगोंके प्रचुर प्रलोभन भाँति-भाँतिसे सज-धजकर उसके सामने स्वयमेव आते हैं। उसे अपनी ओर खींचनेके लिये, परंतु वह उन्हें उसी प्रकार ठुकरा देता है, जैसे बहुमूल्य रत्नोंको पा जानेवाला मनुष्य रंग-बिरंगे काँच-पत्थरोंको।

याद रखो—त्यागीको अपनी सन्तोषमयी वृत्तियों और त्यागभरी स्थितिसे जो सुख प्राप्त होता है, उसकी तुलनामें भोगोंके—धन, मान, यश, आराम, अधिकार आदिके सभी सुख सर्वथा तुच्छ और नगण्य हैं। सच्ची बात तो यह है कि भोग-सुख वस्तुतः सुख ही नहीं है। बुद्धिहीन मनुष्योंको भ्रमके कारण ही उसमें सुखकी प्रतीति होती है। असलमें तो उनसे दुःख ही उत्पन्न होते हैं, इसीसे बुद्धिमान् लोग भोगोंमें अपने मनको नहीं फँसने देते—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

याद रखो—जो वस्तु अनित्य, परिवर्तनशील और अपूर्ण है, उससे कभी सच्चा और स्थायी सुख मिल ही नहीं सकता। इसीलिये आज जो किसी भोग-सामग्रीसे—धनसे, मानसे, सन्तानसे, सत्तासे अपनेको सुखी मानता है, वही कल रोता-विलपता देखा जाता है।

याद रखो— त्यागमें पहले-पहले कुछ कठिनाई सी लगती है, कुछ कर्कशता-सी प्रतीत होती है, इसीसे मन उससे भागना चाहता है; परंतु गहराईसे विचारकर देखनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि जितनी कठिनाइयाँ, जितने क्लेश, जितनी कर्कशता और जितनी पीड़ा भोग-पदार्थोंकी प्राप्तिके साधनमें और प्राप्त होनेपर उनके संरक्षणमें हैं, उतने त्यागमें कदापि नहीं हैं। वरं त्यागकी कठिनाई और भोगकी कठिनाईमें जातिगत बड़ा भेद है। त्यागकी कठिनाई सात्त्विक है और भोगकी कठिनाईमें राजसिकता तथा तामसिकता है। त्यागकी कठिनाईका परिणाम परम अमृत-प्राप्ति है और भोगकी कठिनाईका परिणाम विषमयी ज्वाला है, जो लोक-परलोकके जीवनको जलाकर सर्वथा यातनापूर्ण और जर्जरित कर देती है।

याद रखो—भोग भ्रमाते हैं और त्याग स्व-रूपमें स्थिति कराता है। भोगोंसे कभी न पूरी होनेवाली भयानक इच्छा, कामना और वासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सदा दुःख-ही-दुःख मिलते हैं एवं त्यागसे वे सब-की-सब क्षीण होती हैं तथा खूराक न मिलनेसे—ईंधनके अभावमें आग बुझ जानेके समान स्वयमेव बुझ जाती हैं, मर जाती हैं।

याद रखो—त्यागसे जीवनमें शान्ति मिलती है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** और शान्तिसे मनुष्य परमानन्दस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करता है। भोगसे अशान्ति प्राप्त होती है और वह जीवको जबर्दस्ती नरकानलमें दग्ध होनेके लिये ले जाती है।

याद रखो—यदि तुम 'भोगोंमें सुख है' इस भ्रान्तिको त्यागकर भोगोंका मोह छोड़ दोगे तो शीघ्र ही सुखी हो जाओगे और तुम्हारा यह त्यागका सुखी जीवन तुम्हें भगवान्‌की ओर ले जायगा और ऐसा करनेपर तुम्हें निश्चय ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

लीलामयका रुदन-नाट्य

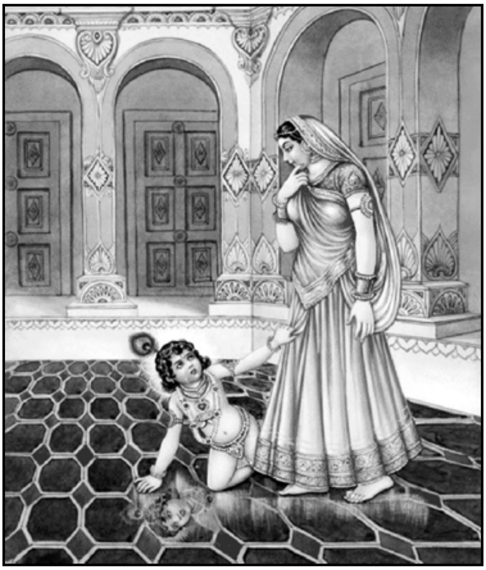

माता यशोदा वात्सल्य-प्रेमकी साकार मूर्ति हैं। परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यलीलामें वे नित्य माता है। यशोदारूपी वात्सल्य-सिन्धुके मन्थनसे जो रत्न प्रकट हुआ, वही नीलमणि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण हैं अर्थात् यशोदाको वात्सल्य-सुख प्रदान करना भी निर्गुण-निराकार परमात्माके श्रीकृष्णावतारका एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

यशोदाजीको ढलती उम्रमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई थी, उनके लिये तो यह सौभाग्य पत्थरपर दूब जमने-जैसा था। उनके लिये सारा संसार उनके नीलमणितक ही केन्द्रित हो गया है। जैसे-जैसे नीलमणि बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे ही मैयाका वात्सल्य भी प्रतिक्षण वर्धमान हो रहा है। वे अपने कन्हैयाको देख-देखकर फूली नहीं समाती हैं। वे विधातासे प्रार्थना करती हैं—हे विधाता! मेरा वह दिन कब आयेगा, जब मैं अपने लालको घुटनोंके बल चलता हुआ देखूँगी—

नंदघरनि आनँदभरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहि मनावै॥

तथा कभी श्रीकृष्णचन्द्रसे निहोरा करने लगती हैं—

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ो किन होहि।

जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र घुटनोंके बल चलने लगे हैं—श्रीनन्दरायजीका मणिमय आँगन है, उसमें नीलमणि घनश्याम किलकारी मारते हुए घुटनोंके बल चल रहे हैं। मणिखचित आँगनमें उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दिखायी देता है और वे उसे अपने नन्हें-नन्हें हाथोंसे पकड़नेका प्रयास करते हैं। भक्त कवि सूरदासजी अपनी बन्द आँखोंसे इस दृश्यका शब्दचित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

किलकत कान्ह घुटरुवन आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन, बिंब पकरिबैं धावत॥
कबहुं निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत॥

इसी भावका एक अन्य पद द्रष्टव्य है—

(माई) बिहरत गोपाल राइ, मनिमय रचे अंगनाइ,
लरकत पररिंगनाइ, घूटुरूनि डोलै।
निरखि-निरखि अपनो प्रति-बिंब, हँसत किलकत औ,
पाछैं चितै फेरि-फेरि मैया-मैया बोलै॥

लीलामय मैयाको सुख देनेके लिये कभी लड़खड़ाते हैं, कभी किलकारी मारते हैं, कभी हँसते हैं और कभी यशोदाजीकी ओर देखकर 'मैया-मैया' कहते हैं, इन सबसे मैया आनन्दित होती हैं, परंतु माँका स्नेह शिशुको रुदन करते देख जितना उमड़ता है, उतना हँसते देखकर नहीं, अतः मैयाके सुखके लिये लीलामय रुदनका नाट्य करते हैं। वे मणिजटित आँगनमें घुटनोंके बल चल रहे हैं, सहसा उनको अपने ही मुखकमलकी परछाईं दिखायी देती है। उसे देखकर वे आश्चर्यचकित हो जाते हैं, फिर उसे अपना सखा बनानेके लिये अपनी भुजा आगे बढ़ाते हैं, परंतु उसे पकड़ नहीं पाते, इससे दुखी होकर माँके मुखकी ओर देखकर रोने लगते हैं—

रतनभूमि पर चलत बकैयाँ।
चकित भये अति कान्ह बिलोकत निज मुख-पंकजकी परछैयाँ॥
निज अनुहार निहारि सखा इक, पकरन हेतु पसारी बैयाँ।
पकरि न सके, सखेद तेरि जननी-मुख रोवन लगे कन्हैया॥

विवाहित स्त्रियोंके कर्तव्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

विवाहित स्त्रीके लिये पतिव्रतधर्मके समान कुछ भी नहीं है, इसलिये उसे मनसा-वाचा-कर्मणा पतिके सेवापरायण होना चाहिये। स्त्रीके लिये पतिपरायणता ही मुख्य धर्म है। इसके सिवा अन्य सब धर्म गौण हैं। महर्षि मनुने स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियोंको पतिकी आज्ञाके बिना यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी न करने चाहिये। स्त्री केवल पतिकी सेवा-शुश्रूषासे ही उत्तम गति पाती है एवं स्वर्गलोकमें देवता लोग भी उसकी महिमा गाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञाके बिना व्रत, उपवास आदि करती है, वह अपने पतिकी आयुको हरती है और स्वयं नरकमें जाती है।

इसलिये पतिकी आज्ञाके बिना यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत आदि भी नहीं करने चाहिये, दूसरे लौकिक कर्मोंकी तो बात ही क्या? स्त्रीके लिये पति ही तीर्थ है, पति ही व्रत है, पति ही देवता एवं परम पूजनीय गुरु है। ऐसा होते हुए भी जो स्त्रियाँ अपने पतिकी आज्ञाके बिना दूसरेको गुरु बनाती हैं, वे घोर नरकको प्राप्त होती हैं। आजकल बहुत-से धूर्त लोग साधु, महन्त और भक्तोंके वेषमें 'बिना गुरु मुक्ति नहीं होती'—ऐसा भ्रम फैलाकर भोली-भाली स्त्रियोंको मुक्तिका झूठा प्रलोभन देकर उनके धन और सतीत्वका हरण करते हैं और घोर नरकके भागी बनते हैं। ऐसे धूर्त-ठगोंसे माताओं और बहनोंको खूब सावधान रहना चाहिये। ऐसे पुरुषोंका मुख देखना भी धर्म नहीं है। मनु आदि शास्त्रकारोंने स्त्रियोंकी मुक्ति तो केवल पातिव्रतसे ही बतलायी है। गोस्वामी तुलसीदासजी भी कहते हैं—

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥

वही स्त्री पतिव्रता है, जो अपने मनसे पतिका हित-चिन्तन करती है, वाणीसे सत्य, प्रिय और हितकारी वचन बोलती है, शरीरसे उसकी सेवा एवं आज्ञाका पालन करती है। जो पतिव्रता होती है, वह अपने पतिकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करती। वह स्त्री पतिसहित उत्तम गतिको प्राप्त होती है और उसीको लोग साध्वी कहते हैं। स्त्रियोंके लिये इस लोक और परलोकमें पति ही नित्य सुखका देनेवाला है।

इसलिये स्त्रियोंको किंचिन्मात्र भी पति के प्रतिकूल आचरण कभी नहीं करना चाहिये। जो नारी ऐसा करती है, यानी पति की इच्छा और आज्ञाके विरुद्ध चलती है, उसको इस लोकमें निन्दा और मरनेपर नीच गतिकी प्राप्ति होती है।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

इस प्रकार पतिकी इच्छाके विरुद्ध चलनेवालीकी यह गति लिखी है। फिर जो नारी दूसरे पुरुषोंके साथ रमण करती है, उसकी घोर दुर्गति होती है, इसमें तो कहना ही क्या है?

पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥

अतः स्त्रियोंको जाग्रत्‌की तो बात ही क्या, स्वप्नमें भी परपुरुषका चिन्तन नहीं करना चाहिये। वही उत्तम पतिव्रता है, जिसके मनमें ऐसा भाव है—

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

पति यदि कामी हो, शील एवं गुणों से रहित हो तो भी साध्वी यानी पतिव्रताको उसे ईश्वरके समान मानकर उसकी सदा सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥

अपमान तो अपने पतिका कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो नारी अपने पतिका अपमान करती है, वह परलोकमें जाकर महान् दुःखोंको भोगती है।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

साध्वी स्त्रियोंको पुरुषों और स्त्रियोंके जो सामान्य धर्म बतलाये हैं, उनका पालन करना चाहिये। पतिव्रत-धर्मके रहस्यको जाननेवाली स्त्रियोंको अपने पतिसे बड़े सास, ससुर आदिकी बड़े आदरके साथ सेवा-पूजा और आज्ञापालन करनी चाहिये; क्योंकि वे पतिके भी पति हैं।

पतिव्रतधर्मके आदर्श स्वरूप सीता, सावित्री आदिने ऐसा ही किया है। जब सावित्री अपने पतिके साथ वनमें गयी, तब पतिकी आज्ञा होनेपर भी वह सास-ससुरकी आज्ञा लेकर ही गयी थी। श्रीसीताजी भी श्रीरामचन्द्रजीके साथ माता कौसल्यासे आज्ञा, शिक्षा और आशीर्वाद लेकर ही गयी थीं।

साध्वी स्त्रीको उचित है कि अपने लड़के-लड़कियोंको आचरण एवं वाणीद्वारा उत्तम शिक्षा दें। माता-पिता जो आचरण करते हैं, बालकोंपर उनका विशेष असर पड़ता है। अत: स्त्रियोंको झूठ-कपट आदि दुराचार एवं काम-क्रोध आदि दुर्गुणोंका सर्वथा त्याग करके उत्तम आचरण करने चाहिये। बहुत-सी स्त्रियाँ लड़कियों को 'राँड़' और लड़कोंको 'तू मर जा' 'तेरा सत्यानाश हो' इत्यादि कटु और दुर्वचन बोलती हैं, एवं उनको भुलानेके लिये 'मैं तुझे अमुक चीज मँगवा दूँगी' इत्यादि झूठा विश्वास दिलाती हैं और 'बिल्ली आयी' 'हाऊ आया' इत्यादिका झूठा भय दिखाती हैं। इससे बहुत नुकसान होता है, अतएव ऐसी बातोंसे स्त्रियोंको बचना चाहिये। बालकका चित्त कोमल होता है, उसमें ये बातें सहज ही जम जाती हैं और वह झूठ बोलना, धोखा देना आदि सीख जाता है, एवं अत्यन्त भीरु और दीन बन जाता है। बालकोंके मनमें वीरता, धीरता और गम्भीरता उत्पन्न हो, ऐसे ओज और तेजभरे हुए सच्चे वचनोंद्वारा उनको आदेश देना चाहिये। उनमें बुद्धि और ज्ञानकी उत्पत्तिके लिये सत्-शास्त्रकी शिक्षा देनी चाहिये। बालकोंको गाली आदि नहीं देनी चाहिये; क्योंकि गाली देना उनको गाली सिखाना है। अश्लील, गंदे-कड़वे अपशब्दोंका प्रयोग भी नहीं करना चाहिये। संगका बहुत असर पड़ता है। पशु-पक्षी भी संगके प्रभावसे सुशिक्षित और कुशिक्षित हो जाते हैं। सुना जाता है कि मण्डनमिश्रके द्वारपर रहनेवाले पक्षी भी शास्त्रवचनोंका उच्चारण किया करते थे। देखा भी जाता है कि गाली बकनेवालों के पास रहनेवाले पक्षी भी गाली बका करते हैं। अत: सदा सत्य, प्रिय, सुन्दर और मधुर हितकर वचन ही बहुत प्रेमसे, धीमे स्वरसे और शान्तिसे बोलने चाहिये। बालकोंके सम्मुख पतिके साथ हँसी-मजाक एवं एक शय्यापर सोना-बैठना कभी नहीं करना चाहिये। जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, वे अपने बालकोंको व्यभिचारकी शिक्षा देती हैं।

परपुरुषका दर्शन, स्पर्श, एकान्तवास एवं उसके चित्रका भी चिन्तन नहीं करना चाहिये। लोभ, मोह, शोक, हिंसा, दम्भ, पाखण्ड आदिसे सदा बचकर रहना चाहिये और उत्तम गुण एवं आचरणोंके लिये गीता, रामायण, भागवत, महाभारत एवं सती-साध्वी स्त्रियोंके चरित्र पढ़नेका अभ्यास रखना चाहिये और उनके अनुसार ही बालकोंको शिक्षा देनी चाहिये।

बच्चोंको खिलाने-पिलाने इत्यादिमें भी अच्छी

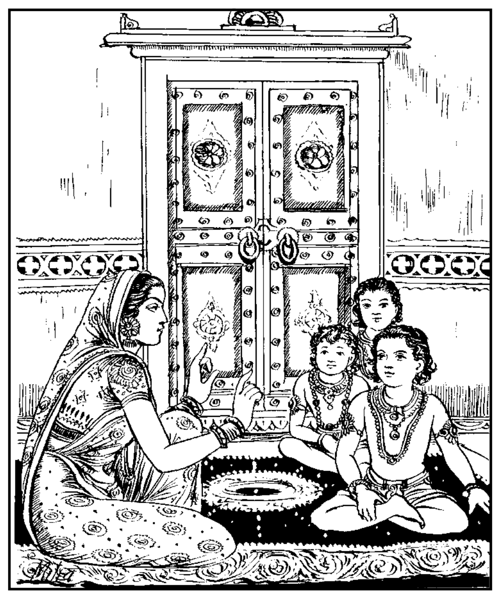

शिक्षा देनी चाहिये। मदालसाने अपने बालकोंको बाल्यावस्थामें ही ज्ञान और वैराग्यकी शिक्षा देकर उन्हें उच्च श्रेणीका बना दिया था। बच्चे बुरे बालकों एवं बुरे स्त्री-पुरुषोंका संग करके कुशिक्षा ग्रहण न कर लें, इसके लिये माता-पिताको विशेष ध्यान रखना चाहिये। बच्चोंको ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे उनका प्रेम श्रृंगार, देहकी सजावट, विलासिता आदिमें न होकर सदाचार, सद्गुण, सादगी, सेवा और ईश्वर तथा धर्म आदिमें प्रवृत्ति हो।

बालकोंको गहने पहनाकर नहीं सजाना चाहिये।

इससे स्वास्थ्यकी हानि एवं कहीं-कहीं प्राणोंका भी जोखिम हो जाता है। बल बढ़ानेके लिए व्यायाम और बुद्धिकी वृद्धिके लिये विद्या एवं उत्तम शिक्षा देनी चाहिये। थियेटर, सिनेमा आदि देखनेका व्यसन और बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, भाँग, गाँजा, सुलफा आदि मादक वस्तुओंका सेवन करनेकी आदत न पड़ जाय, इसके लिये भी माता-पिताको ध्यान रखना चाहिये। लड़की और लड़केके खान-पान, प्यार-दुलार और व्यवहारमें भेद-भाव नहीं रखना चाहिये। प्रायः स्त्रियाँ खान-पान, प्यार-दुलार आदिमें भी लड़कोंके साथ जैसा व्यवहार करती हैं, लड़कियोंके साथ वैसा नही करतीं। उनका अपमान करती हैं। जो स्त्रियाँ इस प्रकार अपने ही बालकोंमें विषमताका व्यवहार करती हैं, उनसे समताकी आशा कैसे की जा सकती है? इस प्रकारकी विषमतासे इस लोकमें अपकीर्ति और परलोकमें दुर्गति होती है। अतः बालकोंके साथ समताका ही व्यवहार रखना चाहिये।

बहुत-सी स्त्रियाँ भूत, प्रेत, देवता, पीर आदिका किसीमें आवेश समझकर भय करने लग जाती हैं। यह प्रायः व्यर्थ बात है। ऐसी बातपर कभी वहम-विश्वास नहीं करना चाहिये। इस प्रकारकी बातें अधिकांशमें तो हिस्टीरिया आदिकी बीमारीसे होती हैं। बहुत-सी जगह तो जान-बूझकर ऐसा ढोंग किया जाता है। कभी-कभी वहम या भयसे भी आवेश आ जाता है। अतः इनपर विश्वास नहीं करना चाहिये। यह सब व्यर्थकी और हानिकारक बातें हैं। इसलिये स्त्रियोंको जादू-टोना, हाथ दिखाना, झाड़-फूँक, मन्त्र आदि अपने या अपने घरवालोंपर नहीं करवाने चाहिये एवं ऐसा करनेवाली स्त्रियोंका संग भी नहीं करना चाहिये।

वेश्या, व्यभिचारिणी, लड़ाई-झगड़ा करनेवाली निर्लज्ज और दुष्ट स्त्रियोंका संग कभी नहीं करना चाहिये। परंतु उनसे घृणा और द्वेष भी नहीं करना चाहिये। उनके अवगुणोंसे ही घृणा करनी चाहिये। बड़ोंकी, दुखियोंकी और घरपर आये हुए अतिथियोंकी एवं अनाथोंकी सेवापर विशेष ध्यान देना चाहिये। यज्ञ, दान, तप, सेवा, तीर्थ, व्रत, देवपूजन आदि पतिके साथ उनकी आज्ञाके अनुसार उनके सन्तोषके लिये अनुगामिनी होकर ही करें, स्वतन्त्र होकर नहीं।

पतिका जो इष्ट है, वही स्त्रीका भी इष्ट है, अतः पतिके बताये हुए इष्टदेव परमात्माके नामका जप और रूपका ध्यान करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये पति ही गुरु है। यदि पतिको ईश्वरभक्ति अच्छी न लगती हो तो पिताके घरसे प्राप्त हुई शिक्षाके अनुसार भी ईश्वरभक्ति, बाहरी भजन, सत्संग, कीर्तन आदि न करके गुप्तरूपसे मनमें ही भगवान्‌का स्मरण, जप और ध्यान करना चाहिये। भक्तिका मनसे विशेष सम्बन्ध होनेके कारण जहाँतक बन सके, गुप्तरूपसे भक्ति करनी चाहिये, क्योंकि गुप्तरूपसे की हुई भक्ति विशेष महत्त्वकी होती है।

पति जो कुछ भी कहे उसका अक्षरशः पालन करे, किंतु जिस आज्ञाके पालनसे पति नरकका भागी हो, उसका पालन नहीं करना चाहिये। जैसे पति काम, क्रोध, लोभ, मोहवश चोरी या किसीके साथ व्यभिचार करने, मांस-मदिरा सेवन करने, किसीको विष पिलाने, जानसे मारने, भ्रूणहत्या-गोहत्या आदि घोर पाप करनेके लिये कहे तो वह नहीं करे। ऐसी आज्ञाका पालन न करनेसे अपराध भी समझा जाय तो भी पतिको नरकसे बचानेके लिये उसका पालन नहीं करना चाहिये। जिस कामसे पतिका परम हित हो, वह काम स्वार्थ छोड़कर करनेकी सदा चेष्टा करनी चाहिये। पतियोंको चाहिये कि वे अपनी सदाचारपरायणा साध्वी पत्नियोंको कदापि बुरे आचरण करनेका आदेश भूलकर भी न दें।

विधवा स्त्रियोंकी सेवापर विशेष ध्यान देना चाहिये; क्योंकि अपने धर्ममें दृढ़ रहनेवाली विधवा स्त्री देवीके समान है। उसकी सेवा-शुश्रूषा करने, उसके साथ प्रेम करनेसे स्त्री इस लोकमें सुख और परलोकमें उत्तम गति पाती है। जो स्त्री विधवाको सताती है, वह उसकी हायसे इस लोकमें दुखिया हो जाती है और मरनेपर नरकमें जाती है। ऊपर बताये हुए पतिव्रत-धर्मको स्वार्थ छोड़कर पालन करनेवाली साध्वी स्त्री इस लोकमें परम शान्ति एवं परम आनन्दको प्राप्त होती है।

श्रीराम-निर्भरा भक्ति

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

जब भी गोस्वामीजी किसी भक्तको कोई बढ़िया वस्तु प्राप्त करते हुए देखते हैं, तो वे झट जाकर पीछे खड़े हो जाते हैं। जैसे, जब प्रसाद बँटता है, तो लोगोंकी भीड़ लग जाती है—यह सोचकर कि प्रसाद एक ही व्यक्तिके लिये तो नहीं होगा, वह सबको मिलेगा। इसी प्रकार गोस्वामीजी भी जब बढ़िया वस्तु बँटते हुए देखते हैं, तो पीछे जाकर जरूर खड़े हो जाते हैं।

सुन्दरकाण्डमें निर्भरा भक्ति बँटने लगी। निर्भरा भक्तिका सरल अर्थ यह है कि जैसे एक छोटा बच्चा अपने कल्याणके लिये—अपने योग-क्षेमके लिये पूरी तरहसे माँपर निर्भर होता है, वैसे ही जब भक्त पूर्णरूपेण भगवान्के प्रति अपनेको समर्पित करके उनपर निर्भर हो जाता है, तब वह अपने जीवनमें समग्रता और धन्यताका अनुभव करता है। तो जब गोस्वामीजीने देखा कि हनुमान्जीको माँने निर्भरा भक्ति दी—

करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना॥

(रा०च०मा० ५। १७। ४)

तो वे भी तुरंत भगवान्से कहने लगे कि प्रभु, मुझे भी दीजिये।

क्या दूँ?

भक्तिं प्रयच्छ—भक्ति दीजिये।

भई, कौन-सी भक्ति दूँ?

महाराज, वही जो यहाँ बँट रही है और जिसे लेनेके लिये हनुमान्जी बेचैन हैं—

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे।

बस, वही निर्भरा भक्ति मुझे भी दीजिये।

तो इससे तुम सन्तुष्ट हो जाओगे?

नहीं महाराज! इसके साथ आप यह भी दीजिये कि—

कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च।

मेरे मनके काम आदि दोषोंको दूर कर दीजिये।

सो क्यों? प्रभु बोले, जब तुमने मुझपर पूरी तरहसे निर्भर रहनेके लिये निर्भरा भक्ति माँग ही ली, तब फिर यह और क्यों कहते हो कि मेरे मनके दोषोंको दूर कर दीजिये? यदि मैं तुम्हारा दोषयुक्त मन स्वीकार कर लेता हूँ और तुम्हारे दोषोंकी ओर दृष्टि नहीं डालता, तो तुम्हें अपने मनके दोषोंकी इतनी चिन्ता क्यों है, जो इन दोषोंको दूर करनेकी मुझसे प्रार्थना कर रहे हो?

बात यह है महाराज! तुलसीदासजी बोले—'बालकके प्रति माँके मनमें बड़ी ममता होती है। कुरूप-से कुरूप और गन्दे-से-गन्दा बालक भी माँको प्यारा लगता है, पर दूसरोंको तो वह प्यारा नहीं लगता। इसी प्रकार भले ही आपको अपना कुरूप बालक उतना ही प्रिय लगता है, जितना अपना सुन्दर बालक और भले ही आप दोषयुक्त व्यक्तियोंको भी अपनानेमें संकोच नहीं करते, फिर भी, महाराज, मुझे एक बातकी बड़ी चिन्ता सताती है। मुझ-जैसे गन्दे व्यक्तिको अपनानेके कारण कहीं आपको कलंक न लगे, यही सोचकर मुझे कष्ट होता है।'

मुझपर कलंक क्यों लगने लगा?

बात यह है महाराज! यदि बालक कुरूप हो, तब तो लोग प्रकृतिको दोष देते हैं, पर यदि वह गन्दा हो, तो लोग बालककी निन्दा नहीं करते, उसकी माँकी निन्दा करते हैं। कहते हैं—'कैसी फूहड़ है, जो अपने बालकको गन्दगीमें लिपटाये रखे हुए है। इसी प्रकार, प्रभु! यदि आपको पा लेनेके बाद भी मेरे मनमें गन्दगी बनी रहेगी, तो लोग आपपर ही कलंक लगायेंगे और कहेंगे कि यह कैसा भगवान् है, जो अपने निकटस्थ लोगोंके भी दोष दूर नहीं कर पाता! सुन्दर, स्वच्छ बालकको देखकर किसीका भी मन उसे गोदमें लेनेको हो जाता, पर यदि वह गन्दगीमें लिपटा हुआ हो, तब तो उसका पिता भी एक बार यही चाहता है कि वह पहले स्वच्छ हो जाय, तब उसे गोदमें लूँ। तो महाराज! भले ही आप अपने स्नेह, करुणा और वात्सल्यके कारण गन्दे मनवाले व्यक्तिको भी स्वीकार कर लें, पर लोग तो उसे दुरदुरायेंगे ही। इसीलिये मैं आपसे याचना कर रहा हूँ कि मेरे मनकी गन्दगीको दूर कर दीजिये।

तो, गोस्वामीजीका तात्पर्य यह है कि भगवान्की भक्तिका प्राप्त होना ही यथेष्ट नहीं है। यदि हमारे जीवनमें दोष बने हुए है, विकारोंका खेल बना हुआ है, तो भक्ति पा लेनेमें ही जीवनकी समग्रता और सार्थकता नहीं है—'श्रीरामचरितमानस' का यही दर्शन है।

भगवत्कृपापर विश्वास कीजिये

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मान और धनकी चाह किसको नहीं होती? संसारमें साधारणतया सभीको होती है। जिनको नहीं होती, वे अतिमानव हैं—महापुरुष हैं। इस दृष्टिसे यदि किसीको धन-मानकी चाह है और वह आजकल और भी बलवती हो रही है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो तब होता जब अन्दर छिपी हुई चाह अन्दर-ही-अन्दर दबकर मर जाती, उसका अस्तित्व ही नष्ट हो जाता।

जीवके अनन्त जन्मोंके भोगोंके संस्कार मनमें रहते हैं, उन संस्कारोंको लिये हुए वह मनुष्य-शरीरमें आता है; यहाँ आनेपर यहाँकी परिस्थितिके अनुसार किसी-किसीके वे संस्कार प्रतिकूल नये संस्कारोंसे दब जाते हैं और किसी-किसीके अनुकूल नये संस्कारोंका बल पाकर विशेषरूपसे बढ़ जाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिये कि अनुकूल सहायता और शक्ति मिलनेसे पूर्व संस्कारोंका बल और विस्तार बहुत बढ़ जाता है; क्योंकि उनकी सारी शक्तियोंको चारों ओरसे विकसित होनेका अवसर और सुभीता मिल जाता है। परंतु प्रतिकूल बाधक शक्तिका सामना होनेपर पूर्व संस्कारोंका बल बहुत क्षीण हो जाता है। कारण, उनको बाधक शक्तिका सामना करना पड़ता है, जिससे उनकी शक्तिका क्षय होता है और इस युद्धमें अपनी शक्तिके स्वाभाविक विकास और विस्तारका अवसर और सुभीता नहीं मिलता। यही नियम सबके लिये लागू होता है। अतएव हमारे संचित कुसंस्कार यहाँ जब सत्संग, स्वाध्याय, सच्छिक्षा, सद्विचार, सद्वस्तुसेवन और भगवान्‌के भजनके प्रतापसे कुछ दब जाते हैं, तब हम समझ बैठते हैं कि हमारे सब कुसंस्कारोंका नाश हो गया और हम सर्वथा शुद्ध हो गये। होता यह है कि कुसंस्कार नष्ट नहीं होते, वे दब जाते हैं, दुबक जाते हैं, छिप जाते हैं और अनुकूल शक्तिका सहारा न मिलनेसे प्रतिक्षण क्षीण होते चले जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि सत्संग, सद्विचार, भजन आदि उपर्युक्त साधन चालू रहते हैं तब तो कुसंस्कारोंको सिर उठानेका मौका नहीं मिलता और अन्तमें वे भगवत्-शरणागति या तत्त्वज्ञानोदयके प्रभावसे मर जाते हैं; परंतु जबतक ऐसा नहीं होता तबतक साधन न होनेसे अनुकूल वातावरण पाते ही उन्हें सिर उठानेका और बाधा न पाने तथा बाहरी सहायता मिल जानेसे प्रबलरूपसे आक्रमण करके अपनी अबाध सत्ता जमानेके लिये कोशिश करनेका मौका मिल ही जाता है। ऐसी दशामें बड़े-बड़े नामी-गिरामी तपस्वी और साधकोंका पतन देखा जाता है, हमलोग तो किस बागकी मूली हैं!

मनुष्यको भगवान्‌ने एक विवेकशक्ति दी है, जिसके द्वारा वह भले-बुरेका निर्णय कर सकता है। यह विवेकशक्ति मनुष्यमात्रमें होती है, चाहे उसके पूर्व संचित कर्म कितने ही अशुभ क्यों न हों। मनुष्यको परमात्माकी यह खास देन है। यह विवेकशक्ति भी परिस्थितिके अनुसार जाग्रत्-सुप्त और तीव्र-मन्द हुआ करती है। जिस मनुष्यके आचरण जितने ही शुद्ध होते हैं, जिसके इन्द्रियद्वार जितने ही सत्‌के सेवनमें लगे रहते हैं, उनकी विवेकशक्ति उतनी ही जाग्रत् और तीव्र रहती है। जरा-सा बुरा संकल्प मनमें उठते ही यह विवेकशक्ति उसे यथार्थरूपमें उस संकल्पका स्वरूप बतलाकर उसे कार्यान्वित न करनेका आदेश करती है। इसीको 'अन्तर्ध्वनि' या 'आत्माकी ध्वनि' कहते हैं। कभी पहले-पहल कोई मनुष्य कुसंगवश चोरी या व्यभिचार करनेका मन करता है, तब अन्दरकी यह आत्माकी आवाज उससे कहती हैं—'यह पाप है, बुरा कर्म है; इसे न करो।' परंतु उस मनुष्यका वर्तमान कुसंग यदि बलवान् होता है तो वह उसके प्रभावमें आकर अन्तरात्माकी इस आवाजकी अथवा विवेकशक्तिके निर्णय और आदेशकी अवहेलना करके उस असत् कर्मको कर बैठता है। जहाँ एक बार ऐसा हुआ, वहीं उसका नया संस्कार उत्पन्न होकर विवेक-शक्तिसे लड़ने लगता है। कुछ समयतक तो ऐसा चलता है, परंतु यदि कुसंग और कुकर्म चालू रहते हैं तो विवेकशक्ति मन्द पड़ जाती है, वह सो-सी जाती है,

ठीक निर्णय नहीं कर पाती और न ठीक आदेश या परामर्श देनेकी शक्ति रखती है। यही गीतोक्त राजसी बुद्धि है, जो धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्यका यथार्थ निर्णय नहीं कर पाती। इसके बाद होते-होते नवीन असत्संस्कारोंका समूह एकत्र होकर इस विवेक-बुद्धिको सर्वथा छिपा देता है और पूर्वजन्मार्जित कुसंस्कारोंको जगाकर—दोनों मिलकर एक नयी मोहाच्छादित बुद्धि उत्पन्न करते हैं, जो प्रत्येक कुसंस्कार और कुकर्मको सत्संस्कार और सत्कर्म बतलाकर उनका समर्थन करती है। यही गीतोक्त तामसी बुद्धि है, जिसकी महिमाका बखान करते हुए भगवान् कहते हैं—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

(१८। ३२)

'हे अर्जुन! जो बुद्धि तमोगुणसे ढकी हुई अधर्मको धर्म बतलाती है और सभी बातोंमें उलटा निर्णय करती है, वह तामसी है।' इस तामसी बुद्धिके राज्यमें मनुष्य विपरीतगामी स्वभावत: ही हो जाता है, उसे अपने दोषपूर्ण काममें दोष नहीं दीखता। कहीं पूर्वके शुभ संस्कार कभी मौका पाकर चुपके-से उसे चेताते हैं। दबे हुए सच्चे हितैषीकी भाँति उसे सावधान करते हैं, तब क्षण-कालके लिये उसे दु:ख होता है, वह मोहसे निकलना चाहता है; परंतु तामसी बुद्धि उससे सहजमें ऐसा होने नहीं देती। वह बड़े सुन्दर-सुन्दर मोहक दृश्य दिखा-दिखाकर उसे अपने ही आदेशके अनुसार चलनेके लिये ललचाती है और वह मनुष्य उसीको उत्तम और लाभप्रद मानकर उसी मार्गपर चलने लगता है। पहले किये हुए अपने शुभ आचरणोंको वह 'भूलमें जीवन व्यर्थ खोया गया' समझता है और वर्तमानके अशुभ आचरणोंको 'जीवनका वास्तविक लाभ'। पूर्वके बुरे संस्कारोंकी पूर्ण जागृति और सात्त्विक बुद्धि अथवा विवेकशक्तिकी लुप्तप्राय स्थितिके साथ ही तामसी बुद्धिके पूर्ण प्रभावकी इस शोचनीय अवस्थासे भगवान्की कृपासे ही मनुष्य निस्तार पा सकता है।

प्राय: मनुष्यमें कुसंग और कुविचार आ जाते हैं, चाहे वे अज्ञानकृत ही हों। इस स्थितिमें अच्छे-अच्छे लोगोंका मन डगमगा जाना सम्भव है। परंतु विचारशील पुरुषको यहीं तो अशुभके साथ युद्ध करना है। यही तो लड़ाईका मौका है। इस लड़ाईमें विजय पाना ही पुरुषार्थ है। यही परम साधन है। 'क्या तुच्छ धन या मानकी इच्छा भगवान्के पथपर चढ़े हुए पुरुषको वापस लौटाकर नीचे गिरा सकती है!' ऐसा मनमें प्रश्न करके आत्माके निश्चयसे यह दृढ़ उत्तर देना चाहिये 'नहीं गिरा सकती'। बुद्धि कितनी ही तामसी हो जाय, यदि आत्मा जाग्रत् रहे, बुद्धिके साथ न मिल जाय, तो बुद्धिका तमोगुण ठहर नहीं सकता।

व्यक्तिको घबराना नहीं चाहिये, भगवान्का भरोसा रखना चाहिये। आत्मामें सत्साहस और आत्मनिर्भरता पैदा करना चाहिये। प्रलोभनोंको पछाड़ना चाहिये। भगवान् मंगलमय हैं। उनके कल्याणमय वरद हस्तको अपने मस्तकपर देखना चाहिये, अनुभव करना चाहिये कि वे रक्षा करनेको तैयार हैं। घबराकर उनका तिरस्कार न करे। वे सतत साथ हैं—कहते हैं,

'मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।'

—फिर डर काहेका? हाँ, साधक यदि हिम्मत हार दे तो जरूर डर है। ये मनमें घुसे हुए चोर भाग जायँगे, वे साधकको आपको भगवान्के आश्रयमें जाते देखेंगे। वे उसे रोकना चाहेंगे, लोभ और भय दिखाकर पथभ्रष्ट करना चाहेंगे; परंतु यदि वह सजग, सावधान और निश्चयपर अटल रहे तो वे निराश होकर उसके हृदयको छोड़कर कोई दूसरा घर ढूँढ़ेंगे।

भगवान्का नाम किसी भी भावसे लीजिये। मनमें प्रसन्नताका अनुभव कीजिये, भगवान्की कृपाको अपने ऊपर बरसते देखकर! देखिये, देखिये—अनवरत अपार वर्षा हो रही है, भगवत्कृपाके सुधासिन्धुके मधुर जलकी! देखकर शीतल, शान्त हो जाइये—नहाकर सारे पाप-तापोंको धो डालिये। पीकर अमृतमय—आनन्दमय, शान्तिमय स्वयं बन जाइये। विश्वास कीजिये—ऐसी ही बात है, इसमें तनिक भी बनावट नहीं है; सत्य है—सदा सत्य है। जो विश्वास करेगा, वही निहाल हो जायगा।

'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजीके कतिपय प्रवचनोंके आधारपर)

लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत-कालमें श्रीकृष्णका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने तत्कालीन समाजको नये परिधानमें ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया।

हम किसी व्यक्तिके चरित्रको उससे सम्बन्धित उपाख्यानोंका विश्लेषण करके समझ सकते हैं। कृष्णके चरित्रमें हमें केन्द्रीय भाव अनासक्ति मिलता है।

कृष्णमें हमें उनके सन्देशमें···· दो विचार सर्वोपरि मिलते हैं, पहला है—विभिन्न विचारोंका सामंजस्य (harmony of different ideas), दूसरा है—अनासक्ति।

कृष्णका कहना है कि अनुष्ठान, देवताओंकी पूजा और दन्तकथाएँ सब ठीक हैं। ····क्यों? क्योंकि वे सब उसी लक्ष्यकी ओर ले जाते हैं। अनुष्ठान ग्रन्थ और आडम्बर—ये सब शृंखलाकी कड़ियाँ हैं। कृष्णने कहा है—एक ही केन्द्रसे निकली इन शृंखलाओंमें-से किसी एकको पकड़ लो। कोई एक पग दूसरेकी अपेक्षा बड़ा नहीं है। ····धर्मके किसी भी पक्षकी, जहाँतक वह निश्छल है, भर्त्सना न करो। इन शृंखलाओंमें किसी एकको पकड़े रहो, वही तुम्हें केन्द्रमें खींच ले जायगी। शेष सब स्वयं तुम्हारा हृदय ही तुम्हें सिखा देगा। भीतर बैठा हुआ गुरु सभी मत-मतान्तरों और दर्शनोंकी शिक्षा दे देगा।····

इस संसारमें हम विविध प्रकारकी उपासना देखते हैं। रोगी मनुष्य ईश्वरके प्रति बड़ा पूजा-भाव रखता है।···· अपनी सम्पदाको खो देनेवाला व्यक्ति धन पानेके निमित्त बड़ी पूजा करता है। लेकिन सर्वोच्च उपासना उस व्यक्तिकी है, जो ईश्वरको ईश्वरके निमित्त ही प्रेम करता है। अन्य (प्रकारकी उपासना) निम्नस्तरीय है। किंतु कृष्ण किसीकी निन्दा नहीं करते। निश्चल खड़े रहनेकी अपेक्षा कुछ करना अधिक अच्छा है। जो मनुष्य ईश्वरकी उपासना आरम्भ कर देता है, उसका विकास क्रमशः होता रहेगा और वह ईश्वरको केवल प्रेमके ही निमित्त प्रेम करने लगेगा।

दिन और रात कर्म करते रहो। 'देखो, मैं तो विश्वका प्रभु हूँ। मेरा कोई भी कर्तव्य नहीं है। हर कर्तव्य बन्धन है, किंतु मैं कर्मके निमित्त कर्म करता रहता हूँ। यदि मैं एक क्षणको भी कर्म बन्द कर दूँ, तो सब अस्त-व्यस्त हो जाय।' कर्तव्यके विचारसे रहित होकर तू भी इसी तरह कर्म कर।....

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ३। २२-२३)

अनासक्त प्रेम (Unattached love) हानि नहीं पहुँचायेगा। 'मेरा' का विचार लेकर कुछ न करो। कर्तव्य कर्तव्यके लिये, कर्म कर्मके लिये।

जब हम उस अनासक्तितक पहुँचते हैं तभी जगत्के आश्चर्यजनक रहस्यको समझ सकते हैं—कैसे वह (जगत्) तीव्र क्रियाशीलता और स्पन्दन है तथा साथ ही गहन शान्ति और निश्चलता है, किस प्रकार वह प्रतिक्षण कार्य और प्रतिक्षण विश्राम भी है। वह जो प्रखर कर्मके मध्य महत्तम अकर्म और महत्तम अकर्ममें प्रखर कर्म देखता है, योगीका पदलाभ कर चुका है।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥

(गीता ४। १८)

वही सच्चा कर्मी है, अन्य कोई नहीं। हम अल्प-सा कर्म करते हैं और अपनेको ध्वस्त (break ourselves) कर डालते हैं। क्यों? हम उस कर्मके प्रति आसक्त हो जाते हैं। यदि हम उससे आसक्त न हो जायँ तो उसके साथ-साथ हमें अनन्त विश्राम भी प्राप्त होगा।....

अनासक्तिके इस रूपतक पहुँच पाना कठिन है। अतएव कृष्ण हमें निरन्तर मार्ग और पद्धतियाँ दिखलाते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके लिये सबसे सरल मार्ग है (अपना) कार्य करना और फलोंको ग्रहण न करना। यह हमारी तृष्णा (desire) है, जो हमें बाँधती है। यदि हम कर्मोंके फलोंको ग्रहण करते हैं, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, तो हमको उन्हें सहन करना ही पड़ेगा, किंतु यदि हम कर्म स्वयं अपने लिये न करके पूर्णरूपेण प्रभुकी महिमाके निमित्त करें तो फल अपनी चिन्ता स्वयं ही कर लेंगे। कर्म करनेका ही तुम्हें अधिकार है, उनके फलोंका नहीं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २।४७)

यदि तुम सबल हो तो वेदान्त-दर्शनको ग्रहणकर स्वाधीन हो जाओ। यदि तुम वह नहीं कर सकते तो ईश्वरकी उपासना करो, यदि वह नहीं हो सके तो किसी प्रतिमाकी पूजा करो। यदि वह भी करनेकी शक्ति तुममें न हो तो लाभके विचारसे रहित होकर कुछ शुभ कर्म करो। तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब प्रभुकी सेवामें समर्पित कर दो। पत्र, पुष्प और जल मेरी वेदीपर कोई भी व्यक्ति जो कुछ चढ़ाता है, मैं उसे एक समान प्रसन्नतासे ग्रहण करता हूँ—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९।२६)

यदि तुम कुछ भी, एक शुभ कर्मतक नहीं कर सकते, तो (प्रभुकी) शरण लो। ईश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयमें स्थित है और वह उनको अपने चक्रपर भरमाया करता है। अपने सम्पूर्ण हृदय और आत्मासे तू उनकी शरणमें जा।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब मैं अवतार लेता हूँ। बार-बार मैं आता हूँ। अतएव जब कभी तू किसी महान् आत्माको मानव-जातिका उत्थान करनेके निमित्त संघर्ष करता देख, जान ले कि मैं आया हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(गीता १०।४१)

श्रीकृष्णके आविर्भावके समयमें जैसी परिस्थितियाँ थीं, वैसी परिस्थितियाँ और घटनाएँ हम अपने समयमें भी घटित होते देख रहे हैं। दुर्योधन और दुःशासन रोज ही द्रौपदीका चीरहरण कर रहे हैं। कंस और जरासंधके अत्याचारोंसे प्रजा करुण-क्रन्दन कर रही है। कृष्ण गीतामें दिये वचनको अवश्य पूरा करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है, पर हम उनकी ओर जायँ तो।

[प्रेषक—श्रीशरदचन्द्रजी श्रोत्रिय]

भगवान् क्रूर कैसे हो सकता है?

च्यांगकाई शेकके समयकी बात है। जापानके दबदबेसे अनेक देश भयभीत थे। च्यांगकाई शेककी पत्नी अपनी मातासे मिलने मायके गयी थीं। माँकी ईश्वरमें अटूट आस्था थी। वे प्रायः कहा करती थीं कि यदि भगवान्के प्रति पूर्ण भक्ति-भावना रखनेवाला व्यक्ति संकटके समय भगवान्से प्रार्थना करे तो भगवान् उसकी प्रार्थना पूरी करनेको तत्पर हो उठते हैं।

बेटीने माँसे कहा—'जापानसे यदि युद्ध हुआ तो चीन-समेत कई देश पूरी तरह नष्ट हो जायँगे। माताजी, आपका तो ईश्वरमें पूर्ण विश्वास है, आप ईश्वरसे प्रार्थना करके इस सम्भावित खतरेसे छुटकारा दिला सकती हैं।'

माँने पूछा—'मैं क्या प्रार्थना करूँ भगवान्से?' बेटीने कहा—'आप भगवान्से प्रार्थना करें कि भगवन्! जापानमें ऐसा भूकम्प ला दें कि पूरा जापान नष्ट हो जाय।'

च्यांगकाई शेककी सासने यह सुना तो वे बोलीं—'बेटी, क्या भगवान् इतना क्रूर हो सकता है कि वह किसीकी प्रार्थनापर आपदा लाकर असंख्य निर्दोषोंकी हत्याको तत्पर हो जाय? किसी भी देशकी अधिकांश जनता तो शान्तिप्रिय होती है। फिर तुम अपने हृदयमें प्रत्येक जापानीके अनिष्टकी कामना करके अपने हृदयको कलुषित क्यों करती हो?'

च्यांगकाई शेककी पत्नी माँके हृदयकी विशालता देखकर हतप्रभ रह गयी। उसने जापानके प्रति घृणाकी भावनाका त्याग कर दिया।

साधकोंके प्रति—

भगवद्भक्तिका रहस्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पद बंदन किएँ नासत बिघ्न अनेक॥

भक्तिका मार्ग बतानेवाले संत 'गुरु,' भजनीय 'भगवान्,' भजन करनेवाले 'भक्त' तथा संतोंके उपदेशके अनुसार भक्तकी भगवदाकार वृत्ति 'भक्ति' है। ये नामसे चार हैं, किंतु तत्त्वतः एक ही हैं।

जो साधक दृढ़ता और त्वराके साथ भगवान्के नामका जप और स्वरूपका ध्यानरूप भक्ति करते हुए तेजीसे चलता है, वही भगवान्को शीघ्र प्राप्त कर लेता है।

जो जिव चाहे मुक्तिको तो सुमरीजे राम।
हरिया गैलै चालताँ जैसे आवे गाम॥

इस भगवद्भक्तिकी प्राप्तिके अनेक साधन बताये गये हैं। उन साधनोंमें मुख्य है—संत-महात्माओंकी कृपा और उनका संग। श्रीरामचरितमानसमें कहा है—

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

उन संतोंका मिलन भगवत्कृपासे ही होता है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥
...। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥
...। सतसंगति संसृति कर अंता॥

असली भगवत्प्रेमका नाम ही भक्ति है। मानसमें कहा है—

पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।
अस बिचारि पुनि पुनि मुनि करत राम गुन गान॥

इस प्रकारके प्रेमकी प्राप्ति संतोंके संगसे अनायास ही हो जाती है; क्योंकि संत-महात्माओंके यहाँ परम प्रभु परमेश्वरके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यकी कथाएँ होती रहती हैं। उनके यहाँ यही प्रसंग चलता रहता है। भगवान्की कथा जीवोंके अनेक जन्मोंमें किये हुए अनन्त पापोंकी राशिका नाश करनेवाली एवं हृदय और कानोंको अतीव आनन्द देनेवाली है। जीवको यज्ञ, दान, तप, व्रत, तीर्थ आदि बहुत परिश्रमसाध्य पुण्य-साधनोंके द्वारा भी वह लाभ नहीं प्राप्त होता, जो कि सत्संगसे अनायास ही हो जाता है; क्योंकि प्रेमी संत-महात्माओंके द्वारा कथित भगवत्कथाके श्रवणसे जीवके पापोंका नाश हो जाता है। इससे अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल होकर भगवान्के चरणकमलोंमें सहज ही श्रद्धा और प्रीति उत्पन्न हो जाती है। भक्तिका मार्ग बतानेवाले संत-महात्मा ही भक्तिमार्गके गुरु हैं। इनके लक्षणोंका वर्णन करते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा है—

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम्।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः॥
कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिञ्चनः।
अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः॥
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुणः।
अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः॥

(११। ११। २९—३१)

'भगवान्का भक्त कृपालु, सम्पूर्ण प्राणियोंमें वैरभावसे रहित, कष्टोंको प्रसन्नतापूर्वक सहन करनेवाला, सत्यजीवन, पापशून्य, समभाववाला, समस्त जीवोंका सुहृद्, कामनाओंसे कभी आक्रान्त न होनेवाली शुद्ध बुद्धिसे सम्पन्न, संयमी, कोमलस्वभाव, पवित्र, पदार्थोंमें आसक्ति और ममतासे रहित, व्यर्थ और निषिद्ध चेष्टाओंसे शून्य, हित-मित-मेध्य-भोली, शान्त, स्थिर, भगवत्परायण, मननशील, प्रमादरहित, गम्भीरस्वभाव, धैर्यवान्, काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सररूपी छः विकारोंको जीता हुआ, मानरहित, सबको मान देनेवाला, भगवान्के ज्ञान-विज्ञानमें निपुण, सबके साथ मैत्रीभाव रखनेवाला, करुणाशील और तत्त्वज्ञ होता है।'

ऐसे भगवद्भक्त ही वास्तवमें भक्तिमार्गके प्रदर्शक हो सकते हैं।

इस जीवको संसारके किसी भी उच्च-से-उच्च पद या पदार्थकी प्राप्ति क्यों न हो जाय, इसकी भूख तबतक नहीं मिटती, जबतक कि यह अपने परम आत्मीय

भगवान्‌को प्राप्त नहीं कर लेता; क्योंकि भगवान् ही एक ऐसे हैं, जिनसे सब तरहकी पूर्ति हो सकती है। उनके सिवा सभी अपूर्ण हैं। पूर्ण केवल एक वे ही हैं और वे पूर्ण होते हुए भी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति बिना कारण ही प्रेम और कृपा करनेवाले परम सुहृद् हैं; साथ ही वे सर्वत्र और सर्वशक्तिमान् भी हैं। कोई सर्वसुहृद् तो हो पर सब कुछ न जानता हो, वह हमारे दु:खको न जाननेके कारण दूर नहीं कर सकता और यदि सब कुछ जानता हो पर सर्वसमर्थ न हो तो भी असमर्थताके कारण दु:ख दूर नहीं कर सकता। एवं सब कुछ जानता भी हो और समर्थ भी हो, तब भी यदि सुहृद् न हो तो दु:ख देखकर भी उसे दया नहीं आती, जिससे वह हमारा दु:ख दूर नहीं कर सकता। इसी प्रकार सुहृद् भी हो अर्थात् दया भी हो और समर्थ भी हो, पर हमारे दु:खको न जानता हो तो भी काम नहीं होता। तथा सुहृद् और सर्वज्ञ हो पर समर्थ न हो तो वह भी हमारे दु:खको जानकर भी दु:ख दूर नहीं कर सकेगा; क्योंकि उसकी दु:खनिवारणकी सामर्थ्य ही नहीं। किंतु भगवान्‌में उपर्युक्त तीनों बातें एक साथ एकत्रित हैं।

उन सर्वसुहृद्, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌पर ही निर्भर होकर जो उनकी भक्ति करता है, वही भक्त है। भगवान्‌की भक्तिके अधिकारी सभी तरहके मनुष्य हो सकते हैं। भगवान्‌ने गीताके नवें अध्यायके ३०वें, ३२वें और ३३वें श्लोकोंमें बतलाया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पापयोनि, स्त्री और दुराचारी—ये सातों ही मेरी भक्तिके अधिकारी हैं।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है—अर्थात् उसने भली-भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

'हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परम गतिको ही प्राप्त होते हैं।'

'फिर इसमें तो कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन मेरी शरण होकर परम गतिको प्राप्त होते हैं।'

यहाँ भगवान्‌ने जातिमें सबसे छोटे और आचरणोंमें भी सबसे गिरे हुए—दोनों तरहके मनुष्योंको ही भगवद्भक्तिका अधिकारी बतलाया। यद्यपि विधि-निषेधके अधिकारी मनुष्य ही होते हैं, तो भी 'पापयोनि' शब्द तो इतना व्यापक है कि इससे गौणीवृत्तिसे पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी लिये जा सकते हैं। अब रहे भावसे होनेवाले अधिकारी। श्रीमद्भागवतमें बतलाया है कि कोई भी कामना न हो या सभी तरहकी कामना हो अथवा केवल मुक्तिकी ही कामना हो, तो भी श्रेष्ठ बुद्धिवाला मनुष्य तीव्र भक्तियोगसे परम पुरुष भगवान्‌की ही पूजा करे—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(२। ३। १०)

यहाँ 'अकाम' से ज्ञानी भक्त, 'मोक्षकाम' से जिज्ञासु तथा 'सर्वकाम'से अर्थार्थी और 'उदार धी' से आर्त भक्त समझना चाहिये। ज्ञानी भक्त वह है, जो भगवान्‌को तत्त्वतः जानकर स्वाभाविक ही उनका निष्कामभावसे नित्य-निरन्तर भजन करता रहता है। जिज्ञासु भक्त उसका नाम है, जो भक्तितत्त्वको जाननेकी इच्छासे उनका भजन करता है। अर्थार्थी भक्त वह होता है, जो भगवान्‌पर भरोसा करके उनसे ही संसारी भोग-पदार्थोंको चाहता है और आर्त भक्त वह है, जो संसारके कष्टोंसे त्राण चाहता है।

गीतामें इन्हीं भक्तोंके सकाम और निष्काम भावोंकी तारतम्यतासे चार प्रकार बतलाये हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(७। १६)

'हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करनेवाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके

भक्तजन मुझको भजते हैं।'

इनमें सबसे निम्नश्रेणीके भक्त अर्थार्थी हैं, उससे ऊँचा आर्त, आर्तसे ऊँचा जिज्ञासु और जिज्ञासुसे ऊँचा ज्ञानी है। भोग और ऐश्वर्य आदि पदार्थोंकी इच्छाको लेकर जो भगवान्‌की भक्तिमें प्रवृत्त होता है, उसका लक्ष्य भगवद्भजनकी ओर गौण तथा पदार्थोंकी ओर मुख्य रहता है; क्योंकि वह पदार्थोंके लिये भगवान्‌का भजन करता है, न कि भगवान्‌के लिये। वह भगवान्‌को तो धनोपार्जनका एक साधन समझता है; फिर भी भगवान्‌पर भरोसा रखकर धनके लिये भजन करता है, इसलिये वह भक्त कहलाता है।

जिसको भगवान् स्वाभाविक ही अच्छे लगते हैं और जो भगवान्‌के भजनमें स्वाभाविक ही प्रवृत्त होता है, किंतु सम्पत्ति-वैभव आदि जो उसके पास है, उनका जब नाश होने लगता है अथवा शारीरिक कष्ट आ पड़ता है, तब उन कष्टोंको दूर करनेके लिये भगवान्‌को पुकारता है, वह आर्त भक्त अर्थार्थीकी तरह वैभव और भोगोंका संग्रह तो नहीं करना चाहता, परंतु प्राप्त वस्तुओंके नाश और शारीरिक कष्टको नहीं सह सकता; अतः इसमें उसकी अपेक्षा कामना कम है। और जिज्ञासु भक्त तो न वैभव चाहता है न योगक्षेमकी ही परवा करता है; वह तो केवल एक भगवत्तत्त्वको ही जाननेके लिये भगवान्‌पर ही निर्भर होकर उनका भजन करता है।

यहाँ एक बात विचारणीय है। भगवान्‌ने यहाँ ज्ञानी, जिज्ञासु, आर्त, अर्थार्थी—ऐसा अथवा अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु, ज्ञानी—ऐसा क्रम न बतलाकर आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ऐसा कहा है। यहाँ आर्त और अर्थार्थी—दोनोंके बीचमें जिज्ञासुको रखनेमें भगवान्‌का यह एक विलक्षण तात्पर्य मालूम देता है कि जिज्ञासुमें जन्म-मरणके दु:खसे दुखी होना और अर्थोंके परम अर्थ परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिकी इच्छा—ये दोनों हैं। इस प्रकार आर्त और अर्थार्थी दोनोंके आंशिक भक्तोंमें आर्तिनाश और पदार्थकामनाके अतिरिक्त मुक्तिकी इच्छा भी रहती है; इसलिये भगवान्‌से जो कष्ट-निवृत्ति तथा सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिकी कामना की गयी, उस कामनारूप दोषको समझनेपर उनके हृदयमें ग्लानि और पश्चात्ताप भी होता है। अतः आर्त और अर्थार्थी—इन दोनोंमेंसे कोई तो जिज्ञासु होकर भगवान्‌को तत्त्वसे जान लेते हैं और कोई भगवान्‌के प्रेमके पिपासु होकर भगवत्प्रेमको प्राप्त कर लेते हैं एवं अन्ततोगत्वा वे दोनों सर्वथा आप्तकाम होकर ज्ञानी भक्तकी श्रेणीमें चले जाते हैं। ज्ञानी सर्वथा निष्काम होता है; इस सर्वथा निष्कामभावका द्योतन करनेके लिये ही भगवान्‌ने 'च' शब्दका प्रयोग करके उसे सबसे विलक्षण बतलाया है। ऐसे ज्ञानी भक्तोंकी भगवद्भक्ति सर्वथा निष्काम—अहैतुकी होती है। श्रीमद्भागवतमें भी कहा है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(१।७।१०)

'ज्ञानके द्वारा जो चिज्जड-ग्रन्थिसे रहित हैं, ऐसे आत्माराम मुनिगण भी भगवान्‌की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान् श्रीहरि ऐसे ही अद्भुत दिव्य गुणवाले हैं।'

भगवान् तो उपर्युक्त सभी भक्तोंको 'उदार' मानते हैं—'**उदाराः सर्व एवैते**' (गीता ७। १८)। अर्थार्थी और आर्त भक्त उदार कैसे? इसका उत्तर यह है कि अपनेसे माँगनेवालों और दु:खनिवारण चाहनेवालोंको भी उदार कहना तो वस्तुतः भगवान्‌की ही उदारता है। परंतु भगवान् इस दृष्टिसे भी उन्हें उदार कह सकते हैं कि वे मेरा पूरा विश्वास करके मुझे अपना अमूल्य समय देते हैं। दूसरी बात यह है कि फलप्राप्तिको मेरे भरोसे छोड़कर मेरा आश्रय पहले लेते हैं, तब पीछे मैं उन्हें भजता हूँ। (गीता ४। ११)। तीसरी बात यह है कि वे देवता आदिका पूजन करके अपना अभीष्ट फल शीघ्र प्राप्त कर सकते थे (गीता ४। १२) और मेरी भक्ति करनेपर तो मैं अपनी कामना पूर्ण करूँ या न भी करूँ; तब भी वे उन पदार्थोंकी अपेक्षा मुझपर विशेष विश्वास करके मेरा भजन करते हैं। इसलिये वे उदार हैं।

इससे यह सिद्ध हुआ कि चाहे जैसा भी हीन जन्म, आचरण और भाववाला मनुष्य क्यों न हो, वह भी भगवद्भक्तिका अधिकारी हो सकता है।

'प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान'

(श्रीअर्जुनकुमारजी बन्सल)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश देते हुए यही तो कहा था।

साधुजनों का परित्राण अति दुष्टों का करने निस्तार।
धर्मस्थापन-हेतु स्वयं प्रभु ने यह लिया दिव्य अवतार॥
हरने को निज प्रेमी विरही जन का घोर विरह संताप।
प्रेम-धर्म संस्थापनार्थ शुचि इच्छामय प्रगटे प्रभु आप॥

इस संसारमें जब-जब कहीं भी अधर्मकी विष-बेल फैलती है और धर्मकी हानि होने लगती है, उस समय साधु-सन्तों और अपने प्रेमी भक्तोंकी रक्षा करने और अधर्मियोंका संहारकर धर्मकी पुनर्स्थापनाके लिये प्रभु स्वयं इस धराधामपर प्रगट होते हैं। उनका यह संकल्प उस समय साकार हुआ, जब मथुराके राजा कंसद्वारा किये जा रहे पाप-पूर्ण अत्याचारोंसे धरतीमाता काँप उठी थी। उस समय प्रभुने अपने भक्तोंकी रक्षाहेतु मानव-देह धारणकर इस देव-भूमिमें प्रकट होनेका निश्चय किया।

भाद्र असित अष्टमी अजनजन्मर्क्ष रोहिणी शुभ नक्षत्र।
मध्यरात्रि बुधवार छा गयी प्रभा सुखद अनुपम सर्वत्र॥
सहसा सुर दुन्दुभी बज उठी स्वर्ग लोक में अपने आप।
सुनकर जन्म अजन्मा का सुर हर्षित हुए मिटा संताप॥
खुली हथकड़ी बेड़ी श्रीवसुदेव देवकी की तत्काल।
देख अलौकिक तेज पुंज अद्भुत बालक हो गये निहाल॥
विष्णु रूप भुज चार शंख शुभ गदा चक्र अम्बुज अभिराम।
शोभित श्याम नील सुन्दर तन पर पीताम्बर दिव्य ललाम॥

(पद-रत्नाकर)

और यह निश्चय उस समय साकार हो उठा जब भाद्रपद कृष्ण अष्टमी बुधवारकी अर्धरात्रिका शुभ समय आया, जब प्रभुको प्रकट होना था। सारे ग्रह-नक्षत्र अनुकूल हो गये। मथुरास्थित कंसके कारागारमें श्रीवसुदेवजी और देवकीजी बन्दी जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस रात्रि सहसा ही स्वर्गलोकमें देवता दुन्दुभी बजाकर हर्ष व्यक्त करने लगे। कारागृह प्रकाशित हो उठा। माता-पिताके हाथ-पैरोंकी हथकड़ी और बेड़ी स्वयं ही खुल गयीं।

ऐसे शुभ समयमें श्रीदेवकीजीके आठवें पुत्ररूपमें एक अद्भुत बालकका प्राकट्य हुआ। यह कोई साधारण बालक नहीं, अपितु स्वयं भगवान् विष्णु ही थे। इनके कमलके समान नेत्र थे, चार भुजाएँ थीं, जिनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभित थे। इनके अद्भुत रूपको निहारकर माता-पिता प्रेम-विभोर हो स्तुति करने लगे। उधर,

विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
गावत गुन गंधर्व पुलकि तन नाचति सब सुर नारि रसिक अति॥
बरषत सुमन सुदेश सूर सुर जय-जयकार करत मानत रति।
सिव विरंचि इन्द्रादि अमर मुनि फूले सुख न समात मुदित मति॥

(सूरसागर)

आकाशमण्डलमें देवता अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए गन्धर्वोंके साथ मिल भगवान्‌का गुणगान करने लगे। प्रेमके वशीभूत हो देवांगनाएँ नृत्य और गायन करने लगीं। गगनमण्डलमें एकत्रित समस्त देवगण भाँति-भाँतिके सुवासित पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। भगवान्‌के अवतारके इस रूपमें दर्शनकर शंकरजी, ब्रह्माजी और इन्द्रादि देवता तथा ऋषि-महर्षि प्रसन्नतासे फूले नहीं समा रहे।

श्रीभगवान्‌के ऐसे अद्भुत स्वरूपको निहारकर माता देवकीजी चकित होकर श्रीवसुदेवजीको संकेतकर कहने लगीं,

देखहुँ आइ पुत्र-मुख काहे, न ऐसी कहुँ देखि न दई।
सिर पर मुकुट पीत उपरैना, भृगु-पद-उर भुज चारि धरे।
पूरब कथा सुनाइ कहि हरि तुम माँग्यौ इहि भेष करे॥
छोरे निगड़ सोआए पहरू द्वारै कौ कपाट उघर्‌यौ।
तुरत मोहि गोकुल पहुँचावहु यह कहिके सिसु रूप धर्‌यौ॥
तब बसुदेव उठे यह सुनतहिं हरषवंत नंद भवन गये।
बालक धरि लै सुरदेवी कौ आइ सूर मधुपुरी ठए॥

(सूरसागर)

हे पतिदेव! यहाँ आकर अपने पुत्रका मुख क्यों नहीं देख लेते? ऐसा रूप न तो कहीं देखा है और न ही कभी सुना है। इनके शीशपर मोर-मुकुट, तनपर पीताम्बर, हृदयपर भृगु ऋषिके पदचिह्न शोभायमान हैं। प्रभुने पूर्वजन्मोंका परिचय देकर शिशुरूप धारणकर कहा, देखो इस समय सारे प्रहरी अचेत-अवस्थामें सो गये हैं। कारागारके सारे द्वार भी खुल गये हैं। शिशुरूप भगवान्ने अपने पिता वसुदेवजीको सम्बोधितकर कहा, मुझे तुरंत ही गोकुल पहुँचा दो। इतना सुनकर,

प्रिय शिशु को ले गोद प्यार से चले पिता वसुदेव सचेत।
यमुना ने कर पद स्पर्श दे दिया मार्ग उनको सुखयोग।
पहुँचे नंद-भवन देखे सब खुले द्वार सोये सब लोग॥
सुला दिया शिशु को धीरे से तुरत यशोदा जी के पास।
खोये निधि ज्यों ले कन्या को चले उदास भरे उल्लास॥
पहुँचे कारागृह तुरत ही हुए बंद अपने सब द्वार।

(पद-रत्नाकर)

शिशुरूप भगवान्को गोदमें ले जैसे ही वसुदेवजी कारागृहसे बाहर आये, उन्होंने देखा, आकाशमें कारे-कजरारे बदरा छाये हुए हैं, उनके मध्यसे बिजली चमक रही है, अल्पकालमें वर्षा भी होने लगी, यमुनाकी जलधारा वेगवती हो उठी। उसकी ऊँची उठती जल-तरंगें जैसे अपने प्रभुके चरण-स्पर्श करनेको व्याकुल हों, निश्चित ही ऐसा हुआ, यमुनाकी एक लहरने प्रभुके चरण-स्पर्शकर अपनेको धन्य कर लिया। ऐसी अवस्थामें शेष भगवान्ने प्रभुके रक्षार्थ अपने फनोंको उनके ऊपर फैला दिया। निश्चिन्त होकर श्रीवसुदेवजीने उफनती नदीमें प्रवेश किया और धैर्य धारणकर रवितनयाको पार करने लगे। भगवान्के चरण-स्पर्श करनेकी कामना पूर्ण होनेके कारण कालिन्दीने श्रीवसुदेवजीको गोकुल जानेका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

यमुना पारकर वसुदेवजीने गोकुलमें प्रवेशकर नन्द-भवनमें जाकर देखा, वहाँ भी सब लोग निद्रामें लीन थे। वसुदेवजीने देखा, यशोदा मैयाकी बगलमें एक नवजात कन्या लेटी है। वसुदेवजीने शीघ्रतासे अपने पुत्रको वहाँ लिटा दिया और कन्याको अपनी गोदमें ले मथुराके कारागारमें आ गये। उनके हाथ-पैरोंके बन्धन स्वत: ही बँध गये। कारागारको यथास्थिति देख द्वारपाल सन्तुष्ट हो अपने स्थानपर बैठ गये। कुछ ही पल बीते थे कि द्वारपालोंने अन्दरसे एक शिशुके रोनेकी आवाज सुनी। उन्होंने तत्काल ही इसकी सूचना राजा कंसको दे दी।

कारागारमें पहुँच कंसने वह कन्या देवकीके हाथोंसे छीन ली। अपने दोनों हाथोंसे कन्याको जैसे ही शिलापर पटककर हत्या करनेकी चेष्टा की, वह कन्या उसके हाथोंसे छूटकर आकाशमें जाकर स्थिर हो गयी और वहींपर उसने अष्टभुजी देवीका रूप धारण कर लिया। कंसको संकेतकर उसने कहा—रे मूरख! तेरा मारनहार तो ब्रजमें जन्म ले चुका है।

उधर गोकुलमें नन्दबाबाके भवनमें लालाका जन्मोत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाने लगा। गोकुलकी एक गोपी अपनी एक सखीसे कहने लगी, री सखी,

हौं इक नई बात सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायौ घर घर होति बधाई॥
द्वारैं भीर गोपि-गोपिनि की महिमा बरनि न जाई।
अति आनन्द होत गोकुल में रतन भूमि सब छाई॥
नाचत वृद्ध तरुन अरु बालक गोरस कीच मचाई।
सूरदास स्वामी सुख सागर सुन्दर स्याम कन्हाई॥

मैंने सुना है, मैया यशोदाने एक पुत्रको जन्म दिया है। प्रसन्नताके इन क्षणोंमें घर-घरमें बधाइयाँ गायी जा रही हैं। नन्द-भवनके द्वारपर गोप-गोपियोंकी भारी भीड़ जमा है। सारे गोकुलमें चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द छाया हुआ है। बालक, युवा और वृद्ध नर-नारियाँ नृत्य और गायनसे अपनी खुशी व्यक्त कर रहे हैं।

इतना सुनकर शान्त बैठी वह गोपी कहने लगी, री सखी, तुमने तो केवल सुना है, मैंने तो अपनी आँखोंसे नन्दभवनका आनन्द देखा है।

हे सखी! हमें भी उस आनन्दकी अनुभूति कराओ। आओ सखी सुनो—

आज नन्द के द्वारैं भीर।
इक आवत इक जात बदा ह्वै इक ठाढ़े मन्दिर कै तीर॥
कोउ केसरि कौ तिलक बनावति कोउ पहिरति कंचुकी सरीर।
एकनि कौं गोदान समर्पत एकनि कौं पहिरावत चीर॥

एकनि कौं भूषन पाटंबर एकनि कौं जु देत नग हीर।
एकनि कौं पुहुपनि की माला एकनि कौं चन्दन घसि नीर॥
एकनि मथैं दूध रोचना एकनि कौं बोधति दै धीर।
सूरदास धनि स्याम सनेही धन्य जसोदा पुण्य सरीर॥

सूरदासजीने आनन्दके इन दुर्लभ क्षणोंको अपने शब्दोंकी मालामें पिरोते हुए सखीके माध्यमसे वर्णन किया है, हे सखी! मैंने देखा नन्दभवनके बाहर श्रीकृष्णके दर्शनार्थ उनके स्नेहीजनोंके आनेका ताँता लगा हुआ था। ब्रजगोपियाँ अपना पूर्ण शृंगार करके आयी हैं। वहाँ गोप-ग्वाले भी भारी संख्यामें आये हैं। इस अवसरपर नन्दबाबाने विभिन्न प्रकारके आभूषण, बहुमूल्य हीरे-मोती, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और गोदानकर सबको सम्मानपूर्वक विदा किया।

आज नन्दबाबा और यशोदा मैया ही नहीं, लाला-जैसे लालको पाकर सारा ब्रजमण्डल ही धन्य हो गया।

सत्यका मूल्य

डॉ० विधानचन्द्र राय पश्चिम बंगालके मुख्यमन्त्री रह चुके हैं। व्यवसायसे डॉक्टर होनेपर भी उनको राजनीतिसे बड़ा प्रेम था। वे जब विद्यार्थी थे, उस समय भी वे बड़े तेजस्वी थे। इतना होनेपर भी वे कॉलेजके तीसरे वर्षमें अनुत्तीर्ण हो गये। इतने तेजस्वी एवं मेधावी होनेपर भी वे अनुत्तीर्ण कैसे हुए, इसका कारण जाननेकी स्वाभाविक ही जिज्ञासा होती है। प्रतिवर्ष प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेवाला विद्यार्थी अकस्मात् अनुत्तीर्ण हो जाय, यह सचमुच आश्चर्यजनक घटना थी।

जिस कॉलेजमें वे अध्ययन कर रहे थे, उसीके फाटकके समीप एक दिन कॉलेजके प्राध्यापक महोदयकी मोटरसे एक दुर्घटना हो गयी। प्राध्यापक महोदयके द्वारा घटित हुई मोटर चलानेकी भूलका ही यह परिणाम था। उस समय विद्यार्थी विधानचन्द्र वहाँ खड़े थे। पुलिसने आकर घटनास्थलकी जाँच की और जो-जो वहाँ उपस्थित थे, उनके नाम लिख लिये। विधानचन्द्रका नाम भी लिखा गया।

अदालतमें प्राध्यापकके ऊपर केस चला और विधानचन्द्र साक्षीके रूपमें न्यायालयमें उपस्थित हुए। विधानचन्द्र बचपनसे ही बड़े सत्यवादी थे। अतः अपने ही प्राध्यापकके विरुद्ध उन्होंने सच-सच बात कह दी। परिणाममें प्राध्यापककी असावधानी मानी गयी और उनपर जुर्माना हुआ।

इस प्रकार दण्डित होनेपर प्राध्यापक महोदयको बहुत बुरा लगा। अपना ही विद्यार्थी अपने विरुद्ध साक्षी देकर उन्हें अपराधी घोषित कराये—इस बातसे उनके मनमें रोष हुआ और उन्होंने इस बातकी अपने मनमें गाँठ बाँध ली। कुछ दिनों पश्चात् परीक्षाके समय प्राध्यापकने अपने विषयमें विधानचन्द्रको बहुत कम अंक देकर उन्हें अनुत्तीर्ण कर दिया। विधानचन्द्रको अपने अनुत्तीर्ण होनेका कारण ध्यानमें तो आ गया, पर वे चुप रहे और दूसरे वर्षमें वे प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हो गये।

कुछ दिनोंके बाद जब उन प्राध्यापक महोदयकी विधानचन्द्रसे भेंट हुई, तब उन्होंने प्रश्न किया—'विधानचन्द्र! गतवर्ष अनुत्तीर्ण होनेका कारण तुम जानते हो?'

'जी हाँ, महाशयजी!' विधानचन्द्रने निडरतासे उत्तर देते हुए कहा—'आपने जान-बूझकर अपने विषयमें कम अंक देकर मुझे अनुत्तीर्ण कर दिया था; क्योंकि मैंने न्यायालयमें आपके विरुद्ध साक्षी दी थी।'

'तो जानते हुए भी तुमने ऐसी चेष्टा क्यों की?' प्राध्यापक बोले। 'मेरे पक्षमें गवाही दी होती तो तुम्हारा एक वर्ष बच जाता।'

'श्रीमन्' विधानचन्द्रने सहजभावसे कहा—'जीवनके एक वर्षसे मेरी समझमें सत्य बोलनेका मूल्य कहीं अधिक है।'

इस अप्रत्याशित उत्तरको सुनकर प्राध्यापक महोदय चुप हो गये।

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❀ मध्यप्रदेशके एक गाँवमें चतुर्भुजभगवान्‌का मन्दिर है। महाराजजीका अपने गुरुदेवके साथ वहाँ जाना होता था। वहाँ पूर्ण शौचाचारपूर्वक भगवान्‌की सेवा-पूजा होती है। उस मन्दिरके पुजारीकी वृद्धा माताजी, जो सेवा-पूजामें सहयोगिनी थीं, एक बार अँधेरेमें गिर गयीं और उनका कूल्हा टूट गया। उन्हें ठाकुरजीकी सेवा न कर पानेका बड़ा क्लेश रहता था और वे उन्हें कठोर शब्दोंमें उलाहना देती रहती थीं। एक दिन वे वृद्ध माताजी अत्यन्त सबेरे-सबेरे घिसटती हुईं किसी तरह मन्दिरतक पहुँच गयीं, गर्भगृहका ताला खोला और अन्दरसे बन्द कर दिया। इधर उनके पुत्र पुजारीजी जब नित्यकी तरह मन्दिर पहुँचे तो गर्भगृहको अन्दरसे बन्द देखकर चोरी आदिकी आशंका करने लगे। दरवाजा पीटनेपर अन्दरसे वृद्धा माताजीने पुकारकर कहा, ठहरो खोलती हूँ और ऐसा कहकर वे सामान्य स्वस्थरूपसे चलकर दरवाजेतक आयीं और दरवाजा खोल दिया। उन्हें टूटे कूल्हेकी पीड़ासे मुक्त देखकर सब आश्चर्यचकित थे। पूछनेपर उन्होंने अपनी सहज ग्रामीण भाषामें बताया कि मैं आज चतुर्भुजभगवान्‌से लड़ाई करने आयी कि इन्होंने मेरा कूल्हा क्यों तोड़ दिया? मैंने इनको कह दिया कि इसे ठीक कर दो ,नहीं तो मैं तुम्हारा कूल्हा तोड़ दूँगी। मैंने चन्दनवाला चकला उठाया भी था, तभी उन्होंने मेरी कमरपर हाथ फेरकर कूल्हा जोड़ दिया। मैं चंगी हो गयी। इस प्रसंगके सम्बन्धमें पूछनेपर भक्तमालीजी महाराजने बताया कि हम लोग प्राय: भगवान्‌की मूर्तिमें पाषाण अथवा काष्ठबुद्धि नहीं छोड़ पाते। उस वृद्धा माताजीकी उस मूर्तिमें दृढ़ भगवद्‌बुद्धि थी, इसलिये यह साक्षात् कृपा-परिणाम हुआ।

❀ भक्तमालीजी बताते थे। राजस्थानके एक राजा आखेटको वनमें गये। वहाँ बावड़ीपर जल पीया। जल पीते समय पासमें पड़ी एक ईंटपर नजर गयी तो उसपर लिखा था—'यहाँ हम दो घड़ी जीवित रहे।' राजा ईंट लेकर महलको लौट आये और पण्डितोंसे उस ईंटपर लिखी पंक्तिका अर्थ पूछा। कोई बता नहीं पाया। संयोगसे एक भ्रमणकारी संत राज्यमें पहुँचे और पूरी बात जानकर उन्होंने राजाको बताया कि उस ईंटपर यह वाक्य उनका ही लिखा हुआ है। उस वनमें बावड़ीपर एक संतसे उनकी भेंट हुई थी और दो घड़ी सत्संग हुआ, भगवच्चर्चा हुई। उसी समय वहाँ पड़ी ईंटपर उन्होंने लिख दिया कि यहाँ हम दो घड़ी जीवित रहे। वस्तुत: जीवनकी सार्थकता सत्संगमें ही होती है और सत्संग भगवत्कृपासे ही प्राप्त होता है, प्रयत्न या भाग्यसे नहीं।

❀ निम्बार्क-सम्प्रदायके संत श्रीभट्टदेवाचार्यजी महाराजके पास व्रजसे एक विप्र बालक आया और दीक्षा देनेकी प्रार्थना की। महाराजजीने उससे कहा कि अभी तुम्हें हमारा दर्शन नहीं हुआ है, दीक्षा कैसे दें? वह कुछ समझा नहीं। महाराजजीने पूछा—हमारेमें कोई विशेषता दीख रही है? उसने कुछ कहा नहीं। महाराज बोले कि अभी दर्शनकी योग्यता नहीं आयी है, अत: युगल नाम लेते हुए गिरिराजजीकी १२ वर्ष परिक्रमा करो। परिक्रमामें ही निवास करो। उसने वैसा ही किया। लौटकर आया और वही प्रश्न पूछनेपर कहा कि आपके स्वरूपसे भगवत्प्रेम बरस रहा है। पुन: १२ वर्ष गिरिराजजीकी शरण लेनेकी आज्ञा हुई। वह गया और फिर वही साधना करके लौटकर आया तब पुन: प्रश्न हुआ—हमारेमें क्या दीखता है? उसने कहा—आपका देह प्राकृत नहीं दीखता, सच्चिदानन्दमय प्रतीत होता है। पुन: १२ वर्षके लिये गिरिराजजी जानेकी आज्ञा हुई। इस बार लौटकर आये तो पूछनेपर कुछ कह नहीं पाये, नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती रही। उन्हें महाराजकी गोदमें बैठे युगल-सरकारकी छबि दीख रही थी। महाराजने प्रेमपूर्वक दीक्षा दी। वे महापुरुष हरिव्यास देवाचार्यके नामसे विख्यात हुए।—**'प्रेम'**

प्रेरक-प्रसंग—

विश्वम्भर सबको सँभालता है

अपने उत्तर भारतके प्रवासकालमें स्वामी विवेकानन्द मध्याह्नमें एक छोटे-से स्टेशनपर रेलगाड़ीसे उतरे। उनके पास कपड़ेके रूपमें कौपीनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। साथमें पीनेका पानीतक नहीं था। बड़े जोरकी लू चल रही थी। प्लेटफार्मपर वे एक वृक्षकी छायामें बैठने गये, पर वहाँसे उठा दिये जानेपर एक खंभेका सहारा लेकर बैठ गये।

सामने ही एक बनिया एक छप्परमें दरी बिछाकर बैठा था। उसने स्वामीजीके साथ ही गाड़ीमें यात्रा की थी। यात्राकालमें स्वामीजीके पास पैसा न होनेसे वे पानीतकके लिये त्रस्त रहे, उनका शरीर प्याससे जल रहा था। बनिया तो बीचमें प्रत्येक स्टेशनपर ठंडा पानी मँगवाकर पीता रहा और स्वामीजीसे कहता रहा—

'हे साधु भाई! देखो, मैं कितना ठंडा पानी पी रहा हूँ। अगर तुम मेहनत करके पैसा कमाओ तो इसी तरह ठंडा पानी और सुस्वादु भोजन मिलता रहेगा।'

अब वही बनिया स्वामीजीके सामने छप्परमें बैठकर उनका मजाक उड़ा रहा था। जब वह दरी बिछाकर मौजसे भोजन करने लगा, तब स्वामीजी थोड़े आड़में पड़ गये। फिर भी वह उनको सुना-सुनाकर कहने लगा—

'देखो बाबाजी! मैं किस तरह लड्डू, पूड़ी, जलेबी आदिका मजा ले रहा हूँ और आरामसे छाँहमें बैठा हूँ। तुम भूखसे तड़प रहे हो।'

यों बोलते-बोलते वह हँसने लगा। उसकी ऐसी धृष्टता देखकर भी स्वामीजी चुपचाप बैठे रहे।

इसी बीच भगवान्‌की कृपासे एक हलवाई आता हुआ दीख पड़ा। उसके एक हाथमें पोटली थी, दूसरे हाथमें जलपात्र तथा बगलमें दरी थी। जल्दी-जल्दी आकर उसने जलपात्र और पोटली नीचे रख दिया एवं वृक्षकी छाँहमें दरी बिछाकर हाथ जोड़कर स्वामीजीसे कहा—

'बाबाजी! पधारिये और भोजन कर लीजिये।'

स्वामीजी आश्चर्यसे देखते रहे। उन्होंने सोचा—'मुझे भोजन देनेवाला यह ईश्वरभक्त कहाँसे निकल आया?'

स्वामीजीने कहा—'भाई! मैं तो तुम्हें पहचानता नहीं, कदाचित् तुम किसी दूसरेके लिये भोजन लाये हो।'

स्वामीजीकी बातके बीचमें ही वह बोल उठा—

'नहीं महाराज! यह भोजन तो मैं आपके लिये ही लाया हूँ। मैं देख रहा हूँ कि वे आप ही हैं, जिनके लिये मैं भोजन लाया हूँ।'

स्वामीजीने फिर कहा—'तुम मुझे अच्छी तरह देख लो।'

आगन्तुक सज्जनने उत्तर दिया—''देखिये स्वामीजी! मैं आपसे अपने साथ घटी घटना बताता हूँ। इस स्टेशनपर मेरी दूकान है। मैं हलवाई हूँ। अभी थोड़ी देर पूर्व मेरी आँख लग गयी थी, तब स्वप्नमें मुझे श्रीरामजीके दर्शन हुए। आपका भी दर्शन कराते हुए उन्होंने कहा—'मेरा यह भक्त पिछले दिनसे भूखा है। उसके लिये जल्दीसे पूड़ी और साग तैयार कर लो तथा जाकर उसको भोजन कराओ। साथमें ठंडा पानी भी लेते जाओ; क्योंकि इस समय ठंडा पानी नहीं मिलता।' इसी बीचमें मेरा स्वप्न टूट गया और मैं श्रीरामजीकी आज्ञाके अनुसार पूड़ी और साग बनाकर तथा थोड़ी ताजी मिठाई रखकर ले आया हूँ। आप भोजन कर लीजिये।''

स्वप्नकी बात सुनकर तथा भगवान्‌के सौहार्दका स्मरण करके स्वामीजीके नेत्र भर आये। वे चुपचाप बैठ गये और भगवान्‌का भेजा हुआ प्रसाद पाने लगे।

दूर बैठा बनिया यह सब देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसे अनुभव हुआ—'मैंने स्वामीजीके साथ अभद्र व्यवहार किया है, अपनी अभद्रताके लिये मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिये।' वह स्वामीजीके पास आया और उनके चरणोंपर गिर पड़ा तथा अपने अभद्र व्यवहारके लिये क्षमा माँगने लगा। इतना ही नहीं, उसने स्वामीजीके चरणोंकी धूल लेकर अपने मस्तकपर चढ़ायी।

स्वामीजीके मनमें तो कुछ था ही नहीं। वे तो विश्वम्भरकी वत्सलताका स्मरण करके गद्गद हो रहे थे।

असफलताकी कड़वाहटमें

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ)

मानव-जातिके इतिहासमें एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा, जिसमें किसी मानवने अपने जीवनमें कभी असफलताका स्वाद न चखा हो। अन्तर मात्र इतना है कि कमजोर सोचके लोग असफलताको मृत्युतुल्य मानकर विषादके दलदलमें अपने उत्साहको नष्ट करके अश्रु गिराते थककर बैठ जाते हैं, जबकि मजबूत इरादोंके लोग अपनी असफलताओंसे भी सीखकर दोगुने उत्साहसे उमंगपूर्वक पुनः लक्ष्य प्राप्तिहेतु सक्रिय हो जाते हैं। किसी वैदेशिक विचारकने कहा है कि असफलताका मतलब ये नहीं कि आप फेल हैं, अपितु आप अभीतक सफल नहीं हुए हैं, बस। (Failure doesn't mean you are a failure, it just means you haven't succeeded yet.) पुनः नीतिकार कहते हैं—

यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥

यहाँ दो धारणाएँ हैं, एक नकारात्मक दूसरा सकारात्मक। जो लोग असफल होनेपर परिस्थिति, देश, काल, संसाधन तथा भाग्यके ऊपर दोषारोपण करके स्वयंको बचानेका प्रयास करते हैं, वे कहते हैं कि मैंने तो पूरा प्रयास किया, काम न बना तो इसमें क्या दोष है? ये नकारात्मकता है, जबकि असफल होनेपर भी सकारात्मक सोचवाला व्यक्ति विचार करता है, सूक्ष्म निरीक्षण करता है कि प्रयास करनेमें मेरी कमी कहाँ रही? **अत्र—**इस कोशिशमें, **दोष—**कमी क्या रह गयी?

असफलता हमारी स्थितिका सही बोध कराती है। एक नाकारा नासमझ पाचक भोजनके बिगड़नेपर ये कहे कि मैंने मेरा काम ईमानदारीसे किया, थोड़ी कुछ गड़बड़ी हो गयी तो मैं क्या करूँ? मेरा क्या दोष? परीक्षाफल विपरीत आनेपर परीक्षार्थी अथवा शिक्षक, दुर्घटना हो जानेपर ड्राइवर, फसल ठीक न आनेपर किसान, सन्तानके बिगड़नेपर माता-पिता यदि ऐसा कहकर बचें कि हम क्या करें, तो समझना कि ये अब भी गलत दिशामें सोच रहे हैं। सावधानीमें कमी, असफलता अथवा बुरा समय हमें हमारे सच्चे अस्तित्वका, शत्रु-मित्रका, अपने-परायेका, धैर्य-अधैर्यका ज्ञान कराते हैं। असफलता अनुभव देकर जाती है। असफलता आत्मविश्लेषणका आत्मकेन्द्रित स्वाध्यायकाल है।

मत घबरा पतझड़ से मानव, धीरज धर ऋतुराज आ रहा।
नहीं ठहरती निशा निराशा, सूरज ये अरुणाभ आ रहा॥

किसीने नैराश्यकी कालिमासे ग्रस्तजनोंको नवप्रभातके आगमनकी बात कह आश्वस्त किया है—

गम की अँधेरी रात में मन को न मायूस कर।
सुबह तो आयेगी जरूर सुबह का इंतजार तो कर॥

(If winter comes, can spring be far behind?) अर्थात् घबरा मत, ये सर्दी आयी है तो क्या वसन्त कहीं दूर पीछे रह सकेगा? नहीं-नहीं ये परिवर्तनशील हैं, धूप-छाँवकी तरह, दिन-रातकी तरह। इनको सहन करना ही चाहिये। भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन!

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।

ये आने-जानेवाली परिस्थितियाँ हैं। इनसे घबराकर भागना कोई समाधान नहीं है, अपितु इनका सामना करते हुए ही आप पार जा सकते हैं। भयके कारणकी खोजमें बढ़ो, भय नहीं रहेगा; क्योंकि वस्तुतः भय है ही नहीं, भ्रमके कारण आपको उसकी प्रतीतिमात्र होती है।

सच बतायें, हमारी जिन्दगीमें सफलता अथवा असफलताका उतना महत्त्व नहीं, जितना कि आपके जीवनका उद्देश्य क्या है, इस बातका है। हमें याद आता है, आप भी जानते हैं, त्रेतायुगका मृतपशुमांसभोक्ता अधमाति-अधम गीधराज जटायु, उनको संसार छोड़े बहुत समय बीत गया, परंतु वे आज भी वर्तमान हैं, प्रासंगिक हैं। जीवन्त हैं, चर्चाका विषय हैं, प्रेरणाके स्रोत हैं, आज भी उनके त्याग और बलिदानकी गाथा सुनकर बड़े-बड़े धीरोंके मस्तक श्रद्धासे नत हो जाते

हैं। आँखें नम हो जाती हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि उनका जीवन समाजको झकझोरकर पूर्ण हुआ। नारी जातिके सम्मानकी रक्षा करते-करते उन्होंने मृत्युका आलिंगन किया। उनके पास बहाने हो सकते थे। जैसे कि मैं बूढ़ा था, निहत्था था, पक्षी था, शक्तिहीन था, सो गया था, सुनायी नहीं दिया था, आँखोंसे दिखना कम हो गया था, अब पंखोंमें लड़ना तो क्या उड़नेकी शक्तितक नहीं रही इत्यादि। पर जटायुजीने इन सब प्रतिकूलताओंकी चिन्ता किये बिना अत्याचार, अन्याय, आतंकका पुरजोर विरोध किया। उफ! पक्षी होकर भी जटायुकी ऐसी उत्तम सोच, शिव-शिव! परंतु हाय! हम मनुष्योंकी दशा क्या है, ये सोचकर कलेजा काँपने लगता है। ये सच है कि उनको सफलता नहीं मिली, वे आक्रान्ता दशाननरूपी भेड़ियेके पंजेमें फँसी मृगीके जैसी छटपटाती माता सीताको नहीं बचा पाये, परंतु उनका वह बलिदान, वह प्रयास आज भी आलोकका कार्य कर रहा है, आप ही सोचना कि क्या उस दण्डकवनमें जहाँ ये घटना घट रही थी, ऋषि, महर्षि, महात्मा, सन्त, वनवासी, भील, कोल, आभीर नहीं रहे होंगे। वनदेवी, वनदेवता नहीं रहे होंगे। ये अवश्य थे, परंतु हाय रे भय! हाय रे नाशवान् जीवनको शाश्वत समझनेका भ्रम! इस भयके कारण तब भी और आज भी अन्यायी, अत्याचारी, आतंकी मुट्ठीभर होनेपर भी नीति-न्याय और विनम्रताका उपहास उड़ाते हैं और समाज तमाशबीन बना देखता रहता है। एक और उदाहरण—क्या महाराणाप्रतापको अपने अभियानमें सफलता मिली? नहीं न, क्या महारानी लक्ष्मीबाईको सफलता मिली? असंख्य उदाहरण हैं, महाराणा प्रताप भारतमाताके स्वाभिमान-सम्मानकी सुरक्षाहेतु जंगलमें रहना स्वीकार करते हैं। घासतककी रोटी खाते, भूखे-बिलखते बच्चोंको देखकर भी वे पथसे न डिगे, ठीक है वे चित्तौड़, मेवाड़ न बचा पाये। तब क्या जिन राजघरानोंने अपनी मर्यादाको तिलांजलि देकर अपनी बहन-बेटियोंको तुच्छ स्वार्थकी पूर्तिहेतु मुगलोंको सौंप दिया, उनकी दासता स्वीकार कर ली, वे लोग राजसिंहासन बचा सके? क्या उनका सम्मान बच सका? सब कालके गालमें विलीन हो गये, परंतु संघर्षकी ज्वाला जलानेवाले, उस महायज्ञमें आत्माहुति देनेवाले राणाप्रताप आज भी जीवन्त हैं। भाई! सोचो, जीवन किसका सफल रहा, देख लेना जबतक हिन्दू रहेगा, भारतवर्ष रहेगा, तबतक राणाप्रताप प्रासंगिक रहेंगे। शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचन्द्र बोस आदि अनेकों उदाहरण हैं।

परीक्षामें असफल होनेपर, साक्षात्कारमें चयन न होनेपर, चुनावमें पराजित होनेपर, वैवाहिक जीवनमें असन्तुलित होकर असफल होनेपर, व्यापारमें घाटा लगनेपर, मित्रद्वारा या अन्य सम्बन्धीद्वारा धोखा मिलनेपर अथवा कितना भी बुरे-से-बुरा हो जाय, उस समय बिखरे बिना, रोये बिना, घबराये बिना, शान्त होकर एकान्तमें बैठो, झंझावातभरी इस तूफानी उफनती जीवन-नदीमें खुदकी डगमगाती आत्मविश्वासरूपी नौकाको देखो, स्वयं ही स्वयंको देखो। देखते-देखते खुदसे एक प्रश्न करो। दर्पणमें खुदको देखकर पूछोगे तो और अच्छा होगा। शान्त भावसे अपने-आपसे पूछो कि क्या मैं दुनियामें पहला व्यक्ति हूँ, जिसके साथ ये परिस्थिति बनी है? क्या इससे पहले किसी और इन्सानके जीवनमें ऐसा कष्ट नहीं आया? उत्तरको सँभालकर मनमें रखो, शान्ति मिलेगी; क्योंकि आपके जहनमें उत्तर आयेगा कि न तो मैं पहला व्यक्ति हूँ, जिसके साथ ये घटना घट रही है, न ही मैं अन्तिम व्यक्ति हूँ। ये सब खेल करोड़ोंके साथ हुए, करोड़ों बार हुए। तब घबराहटसे समाधान न निकलेगा, आँसू गिराना समाधान नहीं है। उठो, समग्र शोक, चिन्ता, निराशाको झटककर उतार फेंको और आत्मविश्वासकी डगमगाती नौकाको धैर्यकी पतवारसे धीरे-धीरे सुरक्षित किनारे लगाओ। फिर वसन्त आयेगा, फिर कोपलें, कलियाँ, फूल, फल लगेंगे। ये जीवन-उपवन सैकड़ों पतझड़ों और वसन्तोंका साक्षी है। आप मुसकराते रहो।

वेदोंके महावाक्य

(डॉ० श्री के०डी० शर्मा)

वेद हमारी संस्कृतिके मूल स्रोत हैं। वेदोंके भाष्यकार सायणाचार्यके अनुसार 'वेद वे ग्रन्थ हैं, जो अभीष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टको दूर रखनेका अलौकिक उपाय बताते हैं। मनुने अपने ग्रन्थ 'मनुस्मृति'में वेदके महत्त्वको प्रतिपादित किया है—'**वेदोऽखिलो धर्ममूलम्**' अर्थात् समस्त धर्म वेदोंपर आधारित हैं। ऋग्वेद, विचारोंकी पवित्रताका वेद है, यजुर्वेद, कर्मोंकी पवित्रताका वेद है, सामवेद, उपासनाकी शुद्धताका वेद है तथा अथर्ववेद, स्थितप्रज्ञताका वेद है। बृहदारण्यकोपनिषद्में वेदोंको 'ईश्वरका नि:श्वास' बताया गया है। अत: वेद अपौरुषेय (मनुष्योंद्वारा नहीं रचित) हैं। वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा थे, मन्त्रसृष्टा नहीं थे अर्थात् उन्होंने मन्त्रोंका साक्षात्कार किया था, मन्त्रोंकी रचना नहीं की थी।

वेदोंके ज्ञानकाण्डको उपनिषद् कहते हैं। वेदोंके अन्तिम भाग होनेके कारण उपनिषदोंको वेदान्त कहते हैं। उपनिषदोंको वेदशीर्ष भी कहा है।

चारों वेदोंके चार महावाक्य प्रसिद्ध हैं। ऋग्वेदका महावाक्य (१) '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' (ऐतरेयोपनिषद् ३।१।३) अर्थात् ब्रह्म सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) स्वरूप है। यजुर्वेदका महावाक्य (२) '**अहं ब्रह्मास्मि**' (बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।१०) अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्त होनेवाले ब्राह्मणने अपनेको ही जाना कि 'मैं ब्रह्म हूँ।' सामवेदका महावाक्य (३) '**तत्त्वमसि**' (छान्दोग्योपनिषद् ६।८।७) अर्थात् 'हे श्वेतकेतो! वह परब्रह्म परमात्मा तू ही है।' अथर्ववेदका महावाक्य (४) '**अयमात्मा ब्रह्म**' (माण्डूक्योपनिषद्, द्वितीय मन्त्र) अर्थात् 'यह आत्मा ब्रह्म है।' ये चारों महावाक्य आत्मा और परमात्माकी एकताका निरूपण करते हैं। इनके सदृश अन्य महत्त्वपूर्ण वाक्य भी हैं, परंतु ये चार महावाक्य प्रसिद्ध हैं तथा वेदोंके महावाक्य कहलाते हैं।

शुकरहस्योपनिषद्के अनुसार श्रीशुकदेवजीने भगवान् शिवसे प्रणवकी दीक्षा ग्रहण की और फिर भगवान् शंकरसे प्रार्थना की—'हे देवाधिदेव! आप प्रसन्न हों। मैं आपसे वेदोंके चारों महावाक्योंका रहस्य सुनना चाहता हूँ।' भगवान् सदाशिव बोले—'हे ज्ञाननिधि शुकदेवजी! मुने! तुम अत्यन्त बुद्धिमान् हो। तुमने वेदोंमें छिपे हुए, पूछनेयोग्य रहस्यको ही पूछा है, अत: 'रहस्योपनिषद्' नामसे प्रसिद्ध इस गूढ़ रहस्यमय उपनिषद्का वर्णन किया जाता है, जिसको भली प्रकार जान लेनेमात्रसे साक्षात् मोक्ष प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। सभी महावाक्योंका उपदेश उनके षडंगके साथ ही करना चाहिये। जैसे चारों वेदोंमें उपनिषद्भाग (ज्ञानकाण्ड) शिर:स्थानीय अर्थात् सर्वोत्तम है, वैसे ही समस्त उपनिषदोंमें यह 'रहस्योपनिषद्' सर्वोत्तम है। जिस विद्वान्ने रहस्योपनिषद्में उपदिष्ट ब्रह्मका ध्यान किया है, उसे पुण्यके हेतुभूत तीर्थस्थान, मन्त्रजप, वेद-पाठ तथा जपादिसे कोई प्रयोजन नहीं है। चारों महावाक्योंके अर्थको सौ वर्षोंतक विचार करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह उनके ऋषि आदिका स्मरण तथा ध्यानपूर्वक एक बारके जपसे ही प्राप्त हो जाता है। अत: महावाक्योंद्वारा वेदान्त-सिद्धान्तको अच्छी तरहसे हृदयंगम करनेहेतु इन महावाक्योंकी व्याख्या की जाती है।

प्रज्ञानं ब्रह्म—प्रथम महावाक्य

यह ऋग्वेदका महावाक्य है तथा ऋग्वेदके उपनिषद् 'ऐतरेयोपनिषद्' के तृतीय अध्यायके प्रथम खण्डके तृतीय मन्त्रके अन्तिम भागमें इस महावाक्यका उल्लेख है। इससे पूर्वके द्वितीय मन्त्रके अनुसार संज्ञान (चेतनता), आज्ञान (प्रभुता), विज्ञान (कला आदिका ज्ञान), प्रज्ञान (समयोचित बुद्धि स्फुरित हो जाना—प्रतिभा), मेधा (धारणा), दृष्टि, धृति, मति, मनीषा (मनन करनेकी शक्ति), जूति (रोगादिजनित दु:ख), स्मृति, संकल्प, क्रतु (अध्यवसाय), असु (प्राण), काम (तृष्णा) और वश (स्त्री-संसर्ग आदिकी कामना)—ये सभी प्रज्ञानके नाम हैं, अर्थात् जिसके द्वारा प्राणी देखता है, सुनता है, सूँघता है, वाणीद्वारा कहता है, रसज्ञान करता है, उसे प्रज्ञान कहा गया है। ऐतरेयोपनिषद्के उपर्युक्त वर्णित

तृतीय मन्त्रके अनुसार 'यह प्रज्ञानरूप आत्मा ही ब्रह्म है, यही इन्द्र है, यही प्रजापति है। अग्नि आदि देव, पाँच महाभूत (पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज), अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज, अश्व, गौ, मनुष्य, हाथी तथा इनके अतिरिक्त जो कुछ भी यह जंगम (पैरोंसे चलनेवाले), पक्षी, स्थावर (अचल)-रूप प्राणिवर्ग है, वह सब प्रज्ञानेत्र (प्रज्ञारूप नेत्रवाले) और प्रज्ञान (निरुपाधिक चैतन्य)-में ही स्थित हैं अर्थात् प्रज्ञानस्वरूप परमात्मामें ही स्थित हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड, प्रज्ञानस्वरूप परमात्माकी शक्तिसे ही ज्ञान-शक्तियुक्त है। समस्त प्राणी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके समय प्रज्ञान यानी ब्रह्ममें स्थित रहनेवाले अर्थात् प्रज्ञाके आश्रित हैं। सम्पूर्ण जगत्का आश्रय प्रज्ञा ही है, अतः **प्रज्ञानं ब्रह्म** अर्थात् प्रज्ञान ही ब्रह्म है।

बृ०उ० (२।३।६) तथा ऐतरेयोपनिषद् शांकरभाष्य (३।१।३)-में कहा गया है कि 'जो सम्पूर्ण औपाधिक विशेषताओंसे रहित, नित्य, निरंजन, निर्मल, निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय '**नेति नेति**' (न+इति अर्थात् इतना ही नहीं) इत्यादि श्रुतियोंद्वारा क्रमसे समस्त विषयोंका बाध करके जाननेयोग्य है तथा सब प्रकारके शाब्दिक ज्ञानका अविषय है तथा अत्यन्त विशुद्ध प्रज्ञारूप उपाधिके सम्बन्धसे सर्वज्ञ तथा जगत्का प्रवर्तक है, वह ईश्वर ही सबका नियन्ता होनेके कारण 'अन्तर्यामी' नामवाला है।

अहं ब्रह्मास्मि—द्वितीय महावाक्य

यह यजुर्वेदका महावाक्य है तथा शुक्लयजुर्वेदके बृहदारण्यकोपनिषद्के प्रथम अध्यायके चतुर्थ ब्राह्मणके दशम मन्त्रके प्रारम्भमें ही इस महावाक्यका उल्लेख है। बृहदारण्यकोपनिषद्के इस दशम मन्त्रके पूर्व नवम मन्त्रके अनुसार 'ब्राह्मणों (ब्रह्मको जाननेकी इच्छावाले जिज्ञासुओं)-ने कहा कि ब्रह्मविद्या (वह विद्या, जिससे परमात्माको जाना जाता है)-से 'हम सर्व हो जायँगे।' अर्थात् ब्रह्मको जाननेसे हम सब कुछ प्राप्त कर लेंगे। यह मन्त्र जिज्ञासारूपमें है। इसका समाधान उपर्युक्त दशम मन्त्रमें किया गया है कि ब्रह्मविद्याके द्वारा जब साधकने अपनेको जाना तब उसने यह महावाक्य '**अहं ब्रह्मास्मि**' (मैं ब्रह्म हूँ) कहा। यहाँ 'अहम्' शब्द जीवके लिये तथा 'ब्रह्म' शब्द ईश्वरके लिये प्रयुक्त हुए हैं। ज्ञान और कर्मयोगकी पूर्णता प्राप्तकर जिज्ञासु साधक निजस्वरूपको जान लेनेपर ब्रह्म ही हो जाते हैं; क्योंकि जीवका वास्तविक स्वरूप ब्रह्ममय है। मु०उ० (३।२।९)-के अनुसार '**ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति**' अर्थात् जो कोई भी उस परब्रह्म परमात्माको जान लेता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है। उपर्युक्त दशम मन्त्रमें इस महावाक्यको स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'देवोंमेंसे जिस-जिसने उस ब्रह्मको जाना वही तद्रूप (तत्+रूप) अर्थात् ब्रह्म हो गया। इसी प्रकार ऋषियों और मनुष्योंमेंसे जिसने उस ब्रह्मको जाना वह तद्रूप हो गया। उस ब्रह्मको आत्मरूपसे देखते हुए ऋषि वामदेवने जाना 'मैं मनु हुआ और सूर्य भी' अर्थात् ऋषि वामदेव मननशीलताके कारण मनु हुए और ज्ञानके प्रकाशसे प्रकाशित होनेके कारण सूर्य हुए। उस ब्रह्मको इस समय भी जो इस प्रकार जानता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ' (**अहं ब्रह्म अस्मि**), वह यह सब हो जाता है। उसका पराभव (अशुभ) देवता भी नहीं कर सकते, क्योंकि वह उनका आत्मा ही हो जाता है। यहाँ भोगोंसे विरक्त एवं सब प्रकारके कर्मफल प्राप्त होनेके कारण जिसका काम और कर्मरूप बन्धन नष्ट हो गया है, उस परब्रह्मभावको प्राप्त होनेवाले साधकको ब्रह्मविद्याके कारण 'ब्रह्म' कहा गया है। ब्रह्मविद्याको प्राप्त करनेके अधिकारी साधकको इस मानव-देहमें परिपूर्ण परमात्म-बुद्धिके साक्षीरूपसे अवस्थित होकर स्फुरित होनेपर 'अहं' कहा जाता है तथा 'अस्मि' (हूँ) यह पद ब्रह्मके साथ अपनी एकताका बोध कराता है, अतः महावाक्य '**अहं ब्रह्मास्मि**' से तात्पर्य 'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ'।

तत्त्वमसि (तत्+त्वम्+असि)—तृतीय महावाक्य

यह सामवेदका महावाक्य है तथा छान्दोग्योपनिषद्के षष्ठ अध्यायके अष्टम खण्डके सप्तम मन्त्रमें इस महावाक्यका उल्लेख है तथा इस अध्यायमें इस महावाक्यका कुल नौ बार उल्लेख हुआ है। इस अध्यायके प्रथम खण्डके अनुसार महर्षि आरुणिका पुत्र

श्वेतकेतु वेदोंका अध्ययनकर उद्दण्डभावसे घर लौटा। महर्षि आरुणिने श्वेतकेतुसे कहा कि 'हे सोम्य! क्या तूने आचार्यसे वह आदेश (उपदेश) पूछा, जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेषरूपसे ज्ञात हो जाता है।' श्वेतकेतुने कहा 'भगवन्! वह आदेश किस प्रकारका है?' पिता (महर्षि आरुणि)-ने अपने पुत्र श्वेतकेतुको अनेक दृष्टान्तोंसे समझाते हुए कहा कि 'सत्संज्ञक आत्मासे यह सारा जगत् आत्मवान् है और हे श्वेतकेतो! 'तत्त्वमसि' अर्थात् वह आत्मा तू ही है। देहादिमें आत्मबुद्धि होनेके कारण सदात्मबुद्धि नहीं होती। अतः महावाक्य '**तत्त्वमसि**' विकाररूप मिथ्या देहादिमें अधिकृत जीवात्मभावकी निवृत्ति करनेवाला ही है तथा ब्रह्म और जीवके एकत्वका सूचक है। '**तत्त्वमसि**' (तत्+त्वम्+असि)-में 'तत्' शब्दका अर्थ ईश्वर और 'त्वम्' शब्दका अर्थ जीव है और 'असि' (है) पदके द्वारा तत् (जीव)-की ब्रह्मसे एकताका ग्रहण कराया गया है। त्वम् और तत् कार्य (शरीर) तथा कारण (माया)-रूप उपाधिके द्वारा ही दो हैं। उपाधि न रहनेपर दोनों ही एकमात्र सच्चिदानन्दस्वरूप (सत्+चित्+आनन्दस्वरूप) हैं। यह जीव कार्य (शरीर)-की उपाधिसे युक्त है और ईश्वर कारण (माया)-की उपाधिसहित है। कार्य एवं कारणरूपको छोड़ देनेपर पूर्ण ज्ञानस्वरूप बच रहता है। पहले आचार्यद्वारा श्रवण करना चाहिये, फिर मनन करना चाहिये, तत्पश्चात् निदिध्यासन करना चाहिये। ब्रह्मविद्याके सम्यक् ज्ञानसे ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

महावाक्य '**तत्त्वमसि**' (तत्+त्वम्+असि) में 'त्वम्' शब्दवाच्य 'महर्षि आरुणिपुत्र श्वेतकेतु' अपने पिताका उपदेश सुननेसे पूर्व अपनेको देह और इन्द्रियोंसे भिन्न सद्रूप (सत्+रूप) सर्वात्मा (सर्व+आत्मा) नहीं जानता था। 'त्वम् तत् असि' अर्थात् अब 'तू वह है' इस प्रकार अनेक दृष्टान्त तथा हेतुपूर्वक पिताद्वारा समझाये जानेपर श्वेतकेतु पिताके इस कथनको कि '**मैं सत् ही हूँ**' समझ गया अर्थात् सद्रूप सत्य और अद्वितीय आत्माका ज्ञान होनेपर उसकी विकाररूप मिथ्या देहात्म-बुद्धिकी निवृत्ति हो गयी।

अयमात्मा ब्रह्म (अयम् आत्मा ब्रह्म)—चतुर्थ महावाक्य

यह अथर्ववेदका महावाक्य है तथा अथर्ववेदके उपनिषद् माण्डूक्योपनिषद्के द्वितीय मन्त्रमें इस महावाक्यका उल्लेख है, जिसका अर्थ है, 'यह आत्मा ब्रह्म है।' अबतक परोक्षरूपसे बतलाये हुए ब्रह्मको विशेषरूपसे प्रत्यक्षतया 'यह आत्मा ब्रह्म है', ऐसा इस उपनिषद्के ऋषि अनुदेश करते हैं। यहाँ 'अयम्' (यह) शब्दद्वारा आत्माको अपने अन्तरात्मस्वरूपसे अंगुलि-निर्देशसे '**अयमात्मा ब्रह्म**' ऐसा कहकर बतलाते हैं। इस उपनिषद्के उपर्युक्त द्वितीय मन्त्रका अन्तिम भाग है '**सोऽयमात्मा चतुष्पात्**' अर्थात् 'वह यह आत्मा चार पादों (अंशों)-वाला है। आगेके मन्त्रोंमें इन चारों पादोंका वर्णन किया गया है। जाग्रत्-अवस्था जिसकी अभिव्यक्तिका स्थान है, वह 'वैश्वानर' आत्माका प्रथम पाद है। स्वप्न जिसका स्थान है, वह 'तैजस' आत्माका द्वितीय पाद है। सुषुप्ति जिसका स्थान है, वह प्राज्ञ ही आत्माका तृतीय पाद है। आत्माका तुरीय (चतुर्थ पाद)-स्वरूप अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश्य (अकथनीय), एकात्मप्रत्ययसार (जाग्रत् आदि स्थानोंमें एक ही आत्मा है) प्रपंचरहित, शान्त, शिव (कल्याणमय) और अद्वैतरूप है। यही आत्मा है और यही साक्षात् जाननेयोग्य है। आगे कहा गया है कि वह यह आत्मा अक्षरदृष्टिसे ओंकार है। आत्माके पाद ही ओंकारकी मात्राएँ अकार, उकार और मकार हैं तथा ओंकारकी मात्राएँ ही आत्माके पाद क्रमशः वैश्वानर, तैजस एवं प्राज्ञ है। अतः ओंकारकी तीनों मात्राएँ तथा आत्माके तीनों पादोंमें एकत्व तथा मात्रारहित ओंकार तथा ब्रह्मकी तुरीयावस्थामें तादात्म्य है। जो उपासक ओंकारकी मात्राओं एवं आत्माके पादोंमें एकत्वको जानकर उपासना करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और महापुरुषोंमें प्रधान होता है, ज्ञान-परम्परामें वृद्धि करता है तथा सबके प्रति समान होता है और उसके वंशमें कोई ब्रह्मज्ञानहीन पुरुष नहीं होता तथा वह सम्पूर्ण जगत्का यथार्थ स्वरूप जान लेता है और उसकी बाह्य दृष्टि निवृत्त हो जाती है अर्थात् वह सर्वत्र परब्रह्मको ही देखता है।

इसी प्रकार मात्रारहित ओंकार तथा आत्माकी तुरीय अवस्थामें तादात्म्यको जानकर जो उपासक तुरीयावस्थाकी आराधना करता है, वह आत्मस्थ हो जाता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

जगद्गुरु श्रीआद्यशंकराचार्यने अपने अन्तिम उपदेश (उपदेशपंचकम्)-में कहा है कि 'वेदोंके महावाक्योंके अर्थका चिन्तन-मननकर निदिध्यासन करना चाहिये। कुतर्क त्यागकर वेदानुकूल तर्कोंसे आत्माका अनुसन्धान करना चाहिये। **'मैं ब्रह्म हूँ'** इस महावाक्यकी निरन्तर भावना करनी चाहिये। रात-दिन अहंकारको नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। देहमें अहंबुद्धिको नष्ट कर देना चाहिये।

सद्गुरुकी कृपासे महावाक्योंद्वारा प्राप्त अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान अग्निसदृश सम्पूर्ण पातकोंको जलाकर भस्म करता है। अपरोक्ष ज्ञान तो इस संसारसे उत्पन्न अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला सूर्य ही है। इस प्रकार महावाक्योंद्वारा जीवात्माको परमात्मासे एकताकी अपूर्व अनुभूति होती है। 'रहस्योपनिषद्' के अनुसार भगवान् शंकरद्वारा चारों महावाक्योंका उपदेश दिये जानेपर शुकदेवजी सम्पूर्ण जगत्के साथ तन्मय अवस्थाको प्राप्त हो गये। जो साधक गुरुकृपासे रहस्योपनिषद्में दिये गये महावाक्योंका अध्ययनकर समझ लेता है, वह सभी पापोंसे छूटकर साक्षात् कैवल्यपद प्राप्त कर लेता है।

जरूरतमन्दकी मदद

अफ्रीकामें एक छोटा-सा देश है बासुतोलैंड! यहाँका अधिकांश भाग घने जंगलोंसे घिरा हुआ है। इन्हीं जंगलोंके बीच कावु गाँवमें बिसाऊ नामक युवक रहता था। वह जंगलमें शिकार करके ही अपना गुजारा करता था। एक दिन बिसाऊ जंगलमें शिकार करने गया। शिकारकी तलाशमें वह काफी दूर निकल गया। इस बीच दोपहर हो गयी। बिसाऊ बुरी तरह थक गया था। भूख-प्याससे बेहाल होकर वह जंगलके भीतर बढ़ता गया। चलते-चलते वह सासे नामक शहरमें पहुँच गया। वहाँ उसे एक हवेली दिखायी दी। बिसाऊने दरवाजा खटखटाया तो एक गोरा साहब निकलकर बाहर आया। ग्रामीण वेशभूषावाले एक काले युवकको देख उसने गुस्सेसे पूछा—क्या बात है? बिसाऊ सहम गया। बोला—साहब! प्याससे दम निकला जा रहा है। पानी पिलाकर रहम कीजिये।

पर गोरे साहबको दया नहीं आयी। उन्होंने उसे अपमानितकर बाहर निकाल दिया। बिसाऊ किसी तरह गिरते-पड़ते अपने घर पहुँचा।

कई महीने बादकी बात है। एक दिन वे ही गोरे साहब जंगलमें शिकार खेलने गये, पर उस दिन उन्हें कोई शिकार नहीं मिला। जंगलमें भटकते-भटकते वह बिसाऊके गाँवमें पहुँच गये। तबतक रात हो चली थी। वे एक झोपड़ीके सामने पहुँचे। वह झोपड़ी बिसाऊ की थी। गोरे साहबने आवाज लगायी। बिसाऊ बाहर निकला। जैसे ही उसकी नजर उनपर पड़ी, वह उन्हें पहचान गया, पर गोरे साहब उसे पहचान नहीं पाये। उन्होंने बिसाऊसे रातभरके लिये आश्रय माँगा। बिसाऊ तुरंत तैयार हो गया।

उसके पास जो भी रूखा-सूखा था, उसीसे गोरे साहबकी सेवा की। गोरे साहबको सोनेके लिये अपना बिस्तर दिया और खुद जमीनपर सोया। सुबह हुई तो साहबने बिसाऊको धन्यवाद दिया और शहरका रास्ता पूछा। बिसाऊने कहा—चलिये, मैं आपको छोड़ आता हूँ।

साहबकी हवेलीके पास पहुँचकर बिसाऊने वापस जानेकी इजाजत माँगी। गोरे साहबने कहा—तुमने मेरा इतना आदर-सत्कार किया, अब मुझे भी कुछ आतिथ्य करने दो। चलो, चलकर मेरे साथ नाश्ता करो।

बिसाऊ बोला—साहब! आप मेरी सेवाके बदलेमें मेरा सत्कार करना चाहते हैं? यह ठीक नहीं है। फिर उसने पुरानी बात साहबको याद दिलायी और कहा—साहब! जरूरतमन्द व्यक्तिकी मदद हमेशा करनी चाहिये। जरूरतमन्दकी मदद ईश्वरकी सेवा है। यही इन्सानी धर्म भी है। इतना कहकर बिसाऊ अपने गाँवकी ओर चल पड़ा। गोरे साहबका सिर शर्मके मारे झुक गया।

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❀ प्रार्थनासे वेद, रामायण, महाभारत, भागवत आदि पुराण भरे पड़े हैं। सभी भाषाओंके सभी सन्तोंने प्रार्थनाएँ की हैं। उनकी वाणीद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थनामें प्रभुके स्वरूपका, अपने स्वरूपका वर्णन होना चाहिये। सूर, तुलसी, मीरा, हरिदास आदिके पदोंद्वारा प्रार्थना कर्तव्य है।

❀ पूजाके जितने उपचार जल, चन्दन, तुलसी, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि हैं उनके अर्पणके समय प्रार्थना रहनी चाहिये। मन्त्रोंका प्रयोग करते हुए सभी उपचार अर्पण करना चाहिये। हृदयका भाव अर्पण करनेपर हृदयके भावको देखकर प्रभु शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, उपचारके साथ प्रार्थना होनी चाहिये। केवल प्रार्थना की जाय कोई उपचार न हो तो भी प्रभु प्रसन्न होकर अपनेतकको दे देते हैं।

❀ **'हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।'** इन्द्रियोंके समूहसे इन्द्रियोंके स्वामीकी सेवा करना ही भक्ति है। जैसे श्रीअम्बरीष सभी इन्द्रियोंसे भक्ति करते थे। इसलिये उनकी इन्द्रियाँ शुद्ध आहारका ग्रहण करती थीं। अत: इनका भी उपयोग भक्तिमें समझना चाहिये। उक्त विधिसे भक्तजन सत्त्वकी शुद्धि करते हैं।

❀ जब चारों ओरसे जल प्राप्त होता है, तब कुएँकी जरूरत नहीं रह जाती। इस तरह प्रेमाभक्तिके सुखको प्राप्त कर लेनेसे संसारके, धनके, इन्द्रियोंके सुखोंको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रह जाती है। कष्टसे वह दूर हो जाता है, उसे शरीरिक या मानसिक कष्टोंका अनुभव नहीं होता है, जैसे श्रीजयदेव कवि। नारदजीके अनुसार प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है अर्थात् उसके सम्बन्धमें ठीक-ठीक कहते नहीं बनता है। अनुमानसे, अनुभवसे सन्तोंने जैसा कहा है, वह ही कहा-सुना जाता है। लोभीको उपदेश नहीं देना पड़ता है कि तुम धनसे प्रेम करो। उसका धनसे सहज ही मोह होता है। धनके मोहको प्रेम नहीं कहना चाहिये। प्रेम चैतन्य प्रभुमें और सच्चे सन्तोंमें हो सकता है। जड़ और नाशवान्‌में प्रेम नहीं हो सकता है। उसमें जो आसक्ति है, उसे मोह कहना चाहिये। धनसे हमारी आसक्ति है, पर वह धन जड़ होनेसे हममें आसक्ति नहीं करेगा। प्रेम विशुद्ध है, मोह कामनासे युक्त है। प्रेम स्वार्थरहित है, मोहमें स्वार्थ है।

❀ ज्ञान और भक्ति प्रारब्धके बलसे नहीं मिलते हैं। इन्हें पानेके लिये अथक परिश्रमकी अति आवश्यकता है। संसारके सुख तथा दु:ख ये जैसे प्रारब्धमें होंगे, बिना प्रयासके भी मिलेंगे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उद्योग नहीं करना चाहिये। ज्ञानी मनुष्य जब परमहंस भावको प्राप्त कर लेता है, तब वह अजगरकी तरह पड़ा रहता है अपने खाने-पीनेकी चिन्ता न करके आत्मचिन्तन, ईश्वरचिन्तन करता है, उसके सम्बन्धकी चिन्ता ईश्वर करता है। परंतु विद्या-भक्तिको, ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये भाग्यके भरोसे नहीं रहना चाहिये, उसे पानेके लिये मन, वाणी, शरीरसे भगवान्‌का भजन-पूजन, शास्त्रोंका अध्ययन, सत्संग अवश्य करना चाहिये।

❀ अपने मनमें प्रेम जाग्रत् हो, इसके लिये भगवत् कृपा ही कारण है। प्रेमको बढ़ानेके लिये विरह और मिलन जरूरी है। ये भी प्रभुकृपासे ही प्राप्त होते हैं। कृपाप्राप्तिके लिये प्रभुकी शरणागति ही मुख्य है।

❀ अपना शरीर और संसार इसमें जो आसक्ति है, उसका कारण यह है कि हम उसकी नश्वरता, दु:खरूपताको नहीं जानते हैं। संसारमें अति आसक्तिके बाद एक-न-एक दिन ऐसा आयेगा कि वहाँसे मन हट जायगा। ईश्वरसे जीवकी एकताका प्रमाण यही है कि एक बार यदि मन लग जाय तो सदा-सर्वदाके लिये तल्लीनता हो जायगी, लाख और रंगकी तरह। पिघली लाखमें रंगके मिलनेके बाद उसे अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। वे स्वयं चाहें कि हम अलग हो जायँ तो भी नहीं हो सकते। भावुक भक्त संसारको ईश्वर मानकर उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं करता है, मन-ही-मन उसे नमस्कार करता है, पर तमोगुणी, रजोगुणी संसारमें लीन नहीं होता है। ईश्वर मानकर संसारको प्रणाम करना चाहिये। माया और उसके कार्यसे अपनेको बचाना चाहिये। [**'परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार**]

प्रेम ही सर्वोपरि तत्त्व है

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

१-भगवान् प्रेमके भूखे हैं—शास्त्रोंमें ऐसा आया है कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म अकेले थे और अपने अकेलेपनको दूर करनेके लिये **(एकाकी न रमते)** उन्होंने स्फुरणा की कि '**एकोऽहं बहुस्याम**' अर्थात् 'मैं एक ही अनेक रूपोंमें हो जाऊँ'। '**बहु स्यां प्रजायेयेति**' (छान्दोग्य० ६। २। ३, तैत्तिरीय० २। ६) अर्थात् 'मैं अनेक रूपोंमें प्रकट होकर बहुत हो जाऊँ।' और इस प्रकार सृष्टिकी रचना हुई। सृष्टिका निर्माण करके भी भगवान्को पूर्ण तृप्ति तभी हुई; जब उन्होंने मनुष्य नामक जीवको रचा, जिससे कि वह भगवान्को प्रेम कर सके।

तुलसीदासजीने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है—

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥

(रा०च०मा० ७। ८६। ४)

एक मनुष्यको ही भगवान्ने यह योग्यता दी है कि वह भगवान्को प्रेम कर सकता है, वह भगवान्के बारेमें चिन्तन-मनन-स्मरण कर सकता है तथा अपने स्वरूपको पहचानकर परमात्माको प्राप्त कर सकता है। वह ब्रह्मस्वरूप, भगवदाकार हो सकता है, भगवान्का प्रिय पात्र होकर उन्हें अनन्त रस प्रदान कर सकता है तथा स्वयं भी उस रसका आस्वादन कर सकता है। तभी तो वह मुक्ति अथवा मोक्षकी भी अवहेलना करके जन्म-जन्मान्तर भगवान्के चरणोंमें प्रीतिकी कामना करता है और भगवान् भी उसके लिये कहते हैं कि ***'मैं भगतनको दास भगत मेरे मुकुटमणि।'***

साधारण जनमानसको वे ही ग्रन्थ अधिक प्रिय होते हैं, जिनमें प्रेमका प्रवाह होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामचरितमानसकी लोकप्रियताका कारण यही है कि उसमें आदिसे अन्ततक जीवमात्रका परमात्मासे स्वाभाविक प्रेम वर्णित हुआ है तथा परमात्मा भी चराचर जीवोंके लिये सदैव व्याकुल रहते हैं। भागवतमें भी भगवान् एवं उनके भक्तोंका प्रेममय स्वरूप हमें आकर्षित करता रहता है। रामलीला और रासलीला युगों-युगोंसे हमारे प्रेममय मानसको आह्लादित करती है। महाभारत हमारे मानसको तुलनात्मक रूपमें कम प्रभावित करती है; क्योंकि उसमें कूटनीति, राजनीति, समाजनीति एवं रणनीतिका अधिक चित्रण हुआ है। जहाँ-जहाँ धर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके प्रकरण हैं, वे ही प्रसंग हमारे मानसको अधिक स्पर्श करते हैं। महाभारतका अमूल्य हीरा 'गीता' हमें इसीलिये प्रिय है कि उसमें भगवान् एवं भक्तका अनन्य प्रेम प्रतिपादित हुआ है।

२-भगवत्प्राप्ति प्रेमसे ही सम्भव है—रामचरित-मानसके बालकाण्डमें रावणके अत्याचारोंका व्यापक रूपमें वर्णन हुआ है। उसने अपनी भुजाओंके बलसे सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल, यम, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग सभीको अपने अधीन कर लिया था। धर्मका लोप हो गया था, सब वेदविरुद्ध कार्य होते थे, जिस स्थानमें गौ और ब्राह्मणोंको राक्षस पाते थे, उसी नगर, गाँव और पुरवेमें वे आग लगा देते थे। कहीं भी शुभ आचरण नहीं होता था तथा देवता, ब्राह्मण और गुरुको कोई नहीं मानता था। न हरिभक्ति थी, न यज्ञ, तप और ज्ञान था। लोग माता-पिता और देवताओंका सम्मान नहीं करते थे और साधुओंसे उलटे सेवा करवाते थे। यह सब दुराचरण देखकर दुखी होकर पृथ्वी गौका रूप धारणकर छिपे हुए देवताओं और मुनियोंके पास गयी। वे सभी मिलकर ब्रह्माजीके लोकमें गये। ब्रह्माजीने कहा हम सभीको श्रीहरिके चरणोंका स्मरण करना चाहिये। सभी देवता विचार करने लगे कि वे प्रभु कहाँ मिलेंगे। उस समय भगवान् शंकरने बड़ी मार्मिक बात कही—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

(रा०च०मा० १। १८५। ५-६)

मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा-विदिशामें बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों।

इसपर व्याकुलहृदयसे ब्रह्माजीसहित सभी देवताओं, मुनियों, सिद्धों आदिने स्तुति-प्रार्थना की तो गम्भीर आकाशवाणी हुई 'हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और पृथ्वीका सब भार हर लूँगा।' इस प्रकार सभी साधकोंको भगवान्को सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् एवं परम दयालु मानते हुए उन्हें अनन्य प्रेमसे प्राप्त करनेका प्रयास करना चाहिये।

इसी प्रकारका एक भावपूर्ण प्रसंग अयोध्याकाण्डमें वाल्मीकिजीके आश्रमका है, जहाँ प्रभु रामने वाल्मीकि मुनिसे पूछा है कि आप हमें वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं लक्ष्मण और सीतासहित पर्णकुटी बनाकर कुछ समय निवास करूँ। वाल्मीकिजी तो त्रिकालदर्शी थे और जानते थे कि प्रभु राम जगदीश्वर हैं तथा नर-लीला कर रहे हैं, अतः उनकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

(रा०च०मा० २। १२७। ३-४)

वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनन्दन! हे भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले चन्दन! आपकी ही कृपासे भक्त आपको जान पाते हैं। फिर वाल्मीकिजीने भक्तोंके हृदयके अनेक गुणोंका वर्णन करते हुए अन्ततः कहा कि जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, उसके मनमें आप निरन्तर निवास कीजिये। मुनिने फिर चित्रकूटपर्वतपर रहनेके लिये प्रभुको कहा, जहाँ अत्रि आदि श्रेष्ठ मुनियोंका वास है, सती अनसूयाद्वारा तपोबलसे लायी गंगाजीकी धारा मन्दाकिनी है। प्रभु राम चित्रकूटपर्वतपर निवास करने लग जाते हैं, जहाँ कोल-भील उनकी बड़े प्रेमसे सेवा करते हैं तथा कहते हैं 'हे नाथ! हम सब कुटुम्बसमेत आपके सेवक हैं, इसलिये हमें आज्ञा देनेमें कोई संकोच न कीजियेगा।' जो वेदोंके वचन और मुनियोंके मनको भी अगम हैं, वे करुणाके धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भीलोंके वचन इस तरह सुन रहे हैं, जैसे पिता बालकोंके वचन सुनता है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज यहाँ अकिंचन भक्तोंके मार्गदर्शनके लिये एक अनुपम पंक्ति कहते हैं—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

(रा०च०मा० २। १३७। १)

'श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है, जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले।'

यहाँ द्रष्टव्य यह है कि मुनियोंके लिये तो प्रभु अगम्य हैं, ***'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'*** हैं और भक्तोंके लिये ***'केवल प्रेमु पिआरा'*** हैं, वे प्रेमसे उन्हें सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

३-सन्त-महात्मा प्रेमका ही पाठ पढ़ाते हैं— ईश्वर और जीवका परस्पर प्रेम तो अनादि है ही, किंतु मानव अगर परमात्माकी सृष्टिसे प्रेम नहीं करता है तो उसका जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता तथा वह परमात्माकी प्रसन्नता अथवा प्रियताको प्राप्त नहीं कर सकता। मैत्री, करुणा, मुदिता, अहिंसा, सहनशीलता, निर्भयता, अन्तःकरणकी निर्मलता, दया, अक्रोध, (हिंसा, ईर्ष्या, घृणा आदिका अभाव), क्षमा, किसीमें भी शत्रु-भावका न होना आदि मानवीय एवं दैवीगुण प्रेमपूर्ण व्यक्तित्वमें ही सम्भव हैं। तभी तो कबीरदासजीने कहा है—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥
चाखा चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान॥

भक्त कवि रहीमदास भी कहते हैं—

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय॥
टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिर पोइये, टूटे मुक्ताहार॥

सहजोबाईका कहना है कि अहंकाररहित व्यक्तित्व ही प्रेमतत्त्वका अधिकारी है—

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे नाँव।
'सहजो' नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव॥

जिसको प्रेमका रंग चढ़ जाता है, जो संसारको ***'सीय राममय'*** एवं ***'प्रभुमय'*** देखने लग जाता है, जो सबमें **'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति'** के भाववाला हो जाता है, उसके लिये परमात्मा अदृश्य नहीं होते और वह परमात्माके लिये अदृश्य नहीं होता। (गीता ६। ३०)

ऐसे ही प्रेमीके लिये सन्त कहते हैं—

प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न जाने कोय।
अष्ट प्रहर भीगा रहे, प्रेम कहावे सोय॥

मानव-जातिके गौरवपूर्ण इतिहासमें एक-से-एक बढ़कर आदर्श चरित्र हुए हैं, जिन्होंने अपने सत्कर्मोंके द्वारा धर्म, संस्कृति एवं मानवीय मूल्योंकी प्रतिष्ठा की है तथा जीवनमें अथक पुरुषार्थके द्वारा आलस्य, राग-द्वेष, सुख-भोग और संग्रहका त्याग करते हुए सेवा, सदाचार और प्रेमका मार्ग आलोकित किया है। अतः प्रेम ही सर्वोच्च सत्ता है, प्रेम ही सच्चिदानन्दघन ईश्वर है तथा प्रेम ही सर्वस्व है।

बच्चोंके संस्कारपर बड़ोंके व्यवहारका प्रभाव

(श्रीसीतारामजी गुप्ता)

घरमें सबसे छोटा सदस्य है मेरा सवा-डेढ़ सालका पौत्र। वह मौका लगते ही झाड़ू उठा लाता है और लगता है फर्शपर झाड़ू लगानेकी कोशिश करने। कभी वाइपर उठा लाता है और उसे चलाने लगता है। कोई भी कपड़ा मिल जाय उसे उठाकर पानीकी बाल्टीमें या जहाँ-कहीं भी पानी मिले, उसमें डुबोकर गीला कर लेता है और कभी फर्शपर पोंछा लगाने लगता है तो कभी मेज साफ करने लगता है। गाड़ीमें अगली सीटपर बैठता है तो कभी रेडियोका वॉल्यूम बढ़ा देता है तो कभी एसी का। कभी वाइपरका लीवर घुमा देता है तो कभी गियर रॉड खींचनेका प्रयास करता है, वह ऐसा क्यों करता है? वह ऐसा इसलिये करता है; क्योंकि वह हम सबको ऐसा करते हुए देखता है और उसे खुद करनेकी कोशिश करता है। यह अत्यन्त स्वाभाविक है। बच्चा खाली या शान्त नहीं बैठ सकता। उसे कुछ-न-कुछ खेल करना ही है। घरके सदस्योंके काम और दूसरे क्रियाकलापोंकी नकल करनेसे अच्छा खेल उसके लिये और कोई हो ही नहीं सकता।

प्रश्न उठता है कि क्या बच्चेके खेलनेके लिये उसके पास खिलौने नहीं हैं, जो वह घरकी दूसरी चीजोंसे खेलनेकी कोशिश करता है? खिलौने पर्याप्त हैं, लेकिन वास्तविकता ये है कि यदि उसके चारों ओर बहुत सारी चीजें रखी हों तो वह उन सबसे भी खेलेगा। अपने आसपासकी सभी चीजें उसे आकर्षित करती हैं। घरके सदस्य जिन चीजोंका प्रयोग करते हैं और जैसे करते हैं, वह भी उन सभी चीजोंका उन्हींकी तरह या अपने तरीकेसे प्रयोग करना चाहता है। यही उसका खेल है। बच्चा खिलौनोंसे भी प्रायः तभी खेलता है, जब दूसरे लोग उनसे खेलना शुरू करते हैं। वास्तविकता ये भी है कि लोग अपने बच्चोंके लिये जो खिलौने खरीदते हैं, वे बच्चोंकी पसन्दके नहीं, अपनी पसन्दके खरीदते हैं। वे खिलौने लाते हैं और बच्चेको बतलाते हैं कि ऐसे खेलो। लोग प्रायः खाने-पीनेकी चीजें भी बच्चोंकी पसन्दके बजाय अपनी पसन्दकी ही लाते हैं। हम बच्चोंसे अपनी बात मनवाने या अपनी पसन्द उनपर थोपनेका प्रयास करते ही रहते हैं।

बच्चा जब बड़ोंकी पसन्दके खिलौनोंसे खेलेगा, उनकी पसन्दकी चीजें खायेगा तो ये भी स्वाभाविक ही है कि उनकी पसन्द या जरूरतके दूसरे काम भी उनकी तरह ही करनेकी कोशिश करेगा; क्योंकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे यही तो हम उसे सिखा रहे होते हैं और यदि ऐसा करनेसे उसे रोकेंगे तो वह मचलने लगेगा। रोयेगा, रूठेगा। उसका ये व्यवहार बड़ोंसे प्रश्न करना ही है कि जब आप सब लोग ये सब कर रहे हो तो मेरे करनेमें क्या बुराई है? उसका व्यवहार बिलकुल ठीक है। यदि आप अपने सामने नहीं करने देंगे तो वह आँख बचाकर या पीछेसे करेगा तो नन्हें बच्चोंको रोकनेकी बजाय वे जो करें करने दीजिये। बस, उनकी सुरक्षाका ध्यान रखिये। उन्हें सर्दी-गर्मी, आग-पानी एवं गन्दगीसे बचानेका प्रयास करते रहिये। जो चीजें उनके लिये खतरनाक या कोई दुर्घटना पैदा करनेवाली हो सकती हों, उनकी पहुँचसे दूर कर दीजिये। खतरनाक रसायन एवं दवाएँ उनकी पहुँचसे बहुत ऊपर रखिये।

यदि बच्चा इधर-उधरसे कोई गलत चीज उठाकर मुँहमें डालता है तो उसे रोकना जरूरी है। इसके लिये उसका पेट भरा होना भी जरूरी है। उसे सही समयपर उचित आहार दीजिये, लेकिन खाने-पीनेके मामलेमें भी बच्चे कम परेशान नहीं करते। अधिकांश बच्चे प्रायः दूध पीने या खानेसे बचनेकी कोशिश करते हैं और जब घरके दूसरे या बड़े सदस्य भोजन करते हैं तो उनके भोजनमेंसे उठाकर खानेका प्रयास करते हैं। ये तो बड़ी अच्छी बात है। इस बातका लाभ उठाना चाहिये। जब घरके बड़े सदस्य कुछ भी खानेके लिये बैठें तो ऐसा भोजन लेकर बैठें, जो

बच्चोंके लिये भी अनुकूल हो। खुद भी खायें और बच्चोंको भी खिलायें। जिन घरोंमें तीसरी या चौथी पीढ़ीके बुजुर्ग जैसे दादा-दादी, नाना-नानी या परदादा-परदादी आदि होते हैं, बच्चोंके लिये हर तरहसे बड़ा ठीक रहता है। बुजुर्ग प्रायः दलिया-खिचड़ी आदि लेते हैं तो बच्चा भी उनके साथ ये सब खाद्य पदार्थ ले लेता है, जो उसके लिये ठीक रहते हैं।

इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है शिष्टाचार एवं नैतिकताके विकासका। अनुकरण अथवा नकलका हम सबके जीवनमें बहुत महत्त्व है। नकलके बिना हम सीख ही नहीं सकते, लेकिन गलत चीजोंकी नकल करना घातक है। बच्चा भी अनुकरणसे ही सीखता है। वह बड़ोंका ही अनुकरण करता है। अपने अन्दाजमें वे बड़ोंकी ही भाषा बोलता है और बड़ोंकी तरह ही बोलता है। हम शिष्टाचारका यथेष्ट पालन न करें और बच्चोंको समझायें कि वे शिष्टाचारका पालन करें तो ये सम्भव नहीं। बच्चोंको शिष्ट बनाना है तो माता-पिताको शिष्ट बनना होगा। हम घरमें एक-दूसरेसे एवं मेहमानों या अन्य आगन्तुकोंसे जैसा व्यवहार करते हैं अथवा जैसी भाषा बोलते हैं, बच्चा भी उसीका अनुकरण करेगा। अभिवादन भी उन्हींकी तरह करेगा। लहजा उसका अपना होता है, लेकिन भाव बड़ोंका ही आ जाता है। माता-पिता एवं घरके अन्य सदस्योंमें जैसी आदतें होती हैं, बच्चा बड़ी सूक्ष्मतासे न केवल उनका निरीक्षण करता रहता है, अपितु उनकी नकल भी करता रहता है।

यदि बच्चोंमें सचमुच अच्छी आदतें डालनी हैं, उन्हें सुसंस्कृत बनाना है तो माता-पिताको भी स्वयंमें अच्छी आदतें डालनी होंगी और सुसंस्कृत बनना होगा। बच्चा जब हमारे व्यवहार अथवा व्यक्तित्वमें कमी तथा बातोंमें विरोधाभास पाता है तो वह विचलित हो जाता है। हमारी कथनी एवं करनीका अन्तर या किसीके सामने एवं उसकी पीठ पीछे उसके प्रति व्यवहार या आचरणमें अन्तर बच्चेपर सबसे ज्यादा बुरा प्रभाव डालता है। वह समझ ही नहीं पाता कि कथनी ठीक थी या करनी ठीक है। उसे पता नहीं चल पाता कि किसीके सामने उसके बारेमें कही गयी बात ठीक थी या उसके जानेके बाद पहली बातके विपरीत कही गयी बात उचित है। उसकी प्रशंसा या चापलूसी ठीक थी या उसकी आलोचना ठीक है। बच्चेके सम्पूर्ण आचरण एवं उसके नैतिक चरित्रके विकासमें इन बातोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है। हम बात-बातपर गुस्सा करते हैं या झूठ बोलते हैं तो बच्चा भी ऐसा ही करेगा। हमारे व्यवहार अथवा आचरणमें दोहरा चरित्र है तो बच्चेके व्यवहार एवं आचरणमें भी वह जल्दी ही आ जायगा।

प्रायः ऐसा होता है कि माता-पिता या घरके अन्य सदस्योंमें कुछ कमियाँ होती हैं। यह स्वाभाविक है, लेकिन कोई माता-पिता या घरका अन्य सदस्य ये नहीं चाहता कि उनके बच्चोंमें भी ये कमियाँ आयें। वे बच्चोंको उन कमियोंसे बचानेके लिये पूरा जोर लगा देते हैं। यहाँ स्वयंको ठीक करनेकी बजाय बच्चोंको ठीक करनेपर जोर होता है। इसके लिये समझानेसे लेकर डाँटने-डपटने एवं मारने-पीटनेतक सभी तरीके आजमाये जाते हैं, लेकिन बच्चोंपर इसका सकारात्मक नहीं नकारात्मक प्रभाव ही पड़ता है। बच्चोंको जिन बातोंके लिये जोर देकर रोकनेका प्रयास किया जाता है, बच्चे उन्हींके बारेमें सोचते रहते हैं और जो हमारी सोच होती है, वही अन्ततोगत्वा हमारे जीवनकी वास्तविकतामें परिवर्तित हो जाती है। बच्चे भी इस प्रभावसे अछूते नहीं रहते।

गुण हों या अवगुण ऊपरसे नीचेकी ओर संक्रमित होते हैं। बच्चे ही नहीं, हम सब भी अपने परिवेशसे ही ज्यादा सीखते हैं, अतः परिवेशको सुधारना अनिवार्य है। यदि हम वास्तवमें चाहते हैं कि हमारे बच्चोंमें अच्छी आदतों एवं सही नैतिक मूल्योंका विकास हो तो उन सभी आदतों एवं नैतिक मूल्योंको स्वयं माता-पिताको भी अपने अन्दर विकसित करना होगा। दूसरा कोई उपाय या विकल्प हो ही नहीं सकता।

साधकोपयोगी उपदेशामृत

[व्रजभाषामें]

(गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

मनः शान्तिकौ उपाय

दिन-रात प्रभुके भजन-चिन्तनमें व्यतीत करनौ। संसार भूलें। जो कुछ करें, कहें, सोचें सब एकमात्र इनके लिये ही हो। अपनौ स्वार्थ छू न जाय। या प्रकार साधन करवेसौं मन शान्त हैकें इनमें लग जावैगौ और क्रमशः-क्रमशः प्रेम उत्पन्न है जावैगौ। वा समय इनकौ चिन्तन करनौ नहीं परै है, स्वतः ही होयवे लगै है। और वह साधक जीते-जी जीवनमुक्त है जाय है।

रहनी

हाँ, भजन-साधनके साथ-साथ रहनीकी हू बड़ी आवश्यकता है। सबकौ हित, सबसौं प्रेम, सबकौ सम्मान, सबकूँ सुख पहुँचायवेकी भावना, काहूकी निन्दा नहीं, काहूसौं विरोध नहीं, हृदय कठोर न बनै, मक्खनवत् कोमल होय। तब यह साधक मरवेके पश्चात् नित्य लीलामें प्रवेश कर जायगौ।

निष्कामता

जो कुछ करै केवल भगवान्‌के लिये ही करै और वासना हू इनकी ही बनै।

धाम

व्रजवासकौ फल? केवल एक श्रीकृष्ण-प्रेम। तबही व्रजवास सफल है।

लक्ष्यकी दृढ़ता

निष्कामता है केवल श्रीकृष्ण ही लक्ष्यमें रहें। जो कछु करै केवल श्रीकृष्णप्रीत्यर्थ ही करै।

शरीरके द्वारा होयवे वारी समस्त चेष्टा, समस्त व्यवहार एवं समस्त सम्बन्ध केवल लक्ष्य (श्रीभगवत्प्रेम)-प्राप्तिके लिये ही हों। सम्पूर्ण जीवन एवं शरीरकी सँभार हू केवल लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये ही हो तथा यह सब शास्त्रसम्मत एवं काहू संतकी आज्ञानुसार ही हों तबही जीवनके अन्ततक लक्ष्य सतत प्रकाशित रह सकै है।

व्रजवासकी रहनी

शरीर एवं शरीरके सम्बन्धसौं ममता, राग-द्वेष, भोगोंमें सुखासक्ति तथा भोग-कामना सब कछु त्यागके श्रीकृष्णप्रेमके लिये व्रजवास करें। श्रीभगवत्प्रेम-प्राप्तिके लिये ही सम्पूर्ण प्रयत्न करैं। संसारी लोगनसौं कोई सम्बन्ध न रहै। काहू महापुरुषमें श्रद्धापूर्वक, सत्यता एवं तत्परताके साथ साधनमें जीवनपर्यन्त जुटौ रहै। शरीर-सम्बन्धी कोई चिन्ता न करे, प्रारब्धानुसार शरीरकौ काम स्वतः ही मृत्युपर्यन्त चलतौ रहै है। उपरोक्त विधिसौं साधनके द्वारा सबरौ काम ठीक बनतौ जायगौ। इन्द्रियाँ जो बर्हिमुखी हैं, वे हू धीरे-धीरे सब ठीक है जायगीं। श्रीभगवत्प्रेमी बनकैं श्रीभगवत्सेवामें पहुँच जायगौ।

साधनमें बाधक

साधनामें प्रगतिके लिये संसारी लोगनसौं सम्बन्ध (ममता, आसक्ति), व्यवहार और संसारी कामनाका त्याग किये बिना साधनामें आगे बढ़वेमें बाधा रहेगी, प्रगति नहीं होगी।

कलिमें भगवत्प्राप्ति अन्य युगनकी अपेक्षा सरल

ऐसे घोर कलिकालमें जबकि वातावरण अत्यन्त दूषित बन गयौ है, लोगनकी मनोवृत्ति अत्यन्त स्वार्थपरायण एवं कुटिल है, ऐसे समयमें कोई पूरी सत्यताके साथ श्रीभगवद्‌भजनमें लग जाय तौ शीघ्र ही भगवान् प्रसन्न हैकें वाकूँ अपनाय लेवें हैं। यह समय श्रीभगवत्प्राप्तिके लिये और युगनकी अपेक्षा अति उत्तम है।

मन लगाकर अधिक समय भजन

प्रश्न—अधिक समयतक मन लगाकर भजन कैसे हो?

उत्तर—कोई अनुभव हुए बिना यह सम्भव नहीं है। उत्साहसे भजनकौ अभ्यास करते रहैं। यह सब आगे चलकैं श्रीगुरुकृपासौं स्वतः ही होय है।

वासनासे बचनेके लिये शुद्ध द्रव्य एवं निरन्तर भजन

प्रश्न— हमारे खर्चके लिये रुपये आवै हैं, उनका उपयोग कैसे करें, जिससे संसार-वासनाका प्रभाव न

पड़े?

उत्तर—वा द्रव्यमेंसौं कुछ निकालकैं सेवामें लगाय दैवेसौं सांसारिक वासनानकौ प्रभाव नायँ परै तथा २४ घण्टे श्रीभगवन्नाम, भजन, कीर्तनमें ही लगौ रहै, जासौं मन खाली न रहन पावै तौ आप-ही-आप सब ठीक है जायगौ। अटके रहौ केवल इनमें।

मनःसंयम

प्रश्न—मन कैसे वश में हो?

उत्तर—अभ्याससे सब हो जायेगा। धीरे-धीरे अभ्यास करैं, घबड़ाय नहीं। श्रीभगवत्कृपापै पूरौ विश्वास करकैं निश्चिन्त हैकें श्रीसद्गुरुद्वारा बतायी भयी विधिके अनुसार भजनमें लगैं।

संसारी संबंध एवं व्यवहार-निषेध

साधककूँ संसारसौं जितनौ कम-सौं-कम व्यवहार करनौ परै उतनौ ही उत्तम। श्रीविहारीजीके दर्शनके साथ-ही-साथ सप्ताहमें एक-दो बार बाजारकौ काम कर लियौ करें।

तुम्हारी लगन उत्तम है। नाम-जप अधिकाधिक करें तथा श्रीभगवच्चिन्तन करें। व्यर्थ-चिन्तन तनिक हू न होन पावै।

इनकी प्राप्तिकी लालसा बढ़ानी चाहिये। यह लालसा ही सब कराय लेगी।

श्रीभगवच्चिन्तन-भजन बढ़ानौ, संसारी सम्बन्धन कूँ घटानौ, काहूसौं विरोध नहीं। कहूँ आसक्ति नहीं, केवल व्यवहारमात्र।

मनःसंयमकौ सुगम उपाय

जैसे घरमें सब सदस्य एक घरके बड़े-बूढ़ेके आज्ञाके अनुसार चलें तौ वा घरकी समुचित उन्नति होय है। याही प्रकार गुरुकी आज्ञानुसार ही साधकके शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कारकी समस्त क्रियाएँ हों तौ साधककी अति शीघ्र उन्नति होय है, साधकके लिये इन्द्रिय-संयम तथा मनकौ संयम अति ही सुगम बन जाय है।

इनकी प्राप्तिकी तीव्र लालसा

या पथमें कठिनाई तबहीतक है, जबतक इनकी प्राप्तिकी तीव्र लालसा नहीं बनी। इनके लिये मनमें तड़फन अबही उत्पन्न नहीं भई। अबही संसार सुहाय है।

मनःसंयमकौ उपाय

इनकी प्राप्तिकी लालसा, संसारसौं पूर्ण वैराग्य होयवेसौं सबरौ समय, समस्त इन्द्रियाँ एवं मन भजनमें लगवे लगेगौ तथा या मार्गमें कोई विघ्न नायँ आय सकै है। या मार्गमें कोई विघ्न केवल संसारकौ अच्छौ लगनौ ही है।

संसारसौं वैराग्य तथा श्रीभगवत्प्रेम-प्राप्तिकी तीव्र लालसा हैवेपै तौ विघ्न हू साधककूँ या पथमें दृढ़ता ही प्रदान करें हैं।

साधकके साधनमें सहायक कर्तव्य

केवल श्रीभगवत्प्रेमी जननसौं दृढ़ सम्बन्ध, संसारमें व्यवहारमात्र तथा काहूसौं विरोध और कहूँ आसक्ति न रहै। [**संकलन—बाबा श्रीरामदासजी**]

यह धन मातृभूमिके लिये है

परम राष्ट्रभक्त चन्द्रशेखर आजाद सशस्त्र क्रान्तिके द्वारा विधर्मी-विदेशी अंग्रेजोंके चंगुलसे भारतको मुक्त करानेके अभियानमें जुटे हुए थे। शस्त्रास्त्र खरीदनेके लिये धनकी आवश्यकता थी। उसके लिये सरकारी खजानेको लूटकर धन इकट्ठा किया गया।

एक दिन उस धनमेंसे कुछ रुपये निकालकर उनके साथीने कहा—'यह माताजी (आजादजीकी माता, जो उन दिनों दाने-दानेको मोहताज थीं)-के पास पहुँचाये देता हूँ।' यह सुनते ही नैतिकताके संस्कारोंमें पले-बढ़े आजादने गुर्राकर कहा—'खबरदार, यह धन मातृभूमिकी स्वाधीनताके पुनीत कार्यके लिये इकट्ठा किया गया है। इसमेंसे एक नया पैसा भी मेरी माताजीके काम नहीं आयेगा। मेरी माताजी इस प्रकारके धनका प्रयोगकर पापकी भागी क्यों बनेंगी?'

निन्दा महापाप

(श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसकी प्रशंसा हो। कोई भी व्यक्ति अपनी निन्दा सुननेको तैयार नहीं, पर दूसरोंकी निन्दा करनेमें हर व्यक्ति तैयार मिलता है। **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'** इस महान् आदर्श वाक्यके अनुसार मनुष्यको वैसा व्यवहार दूसरोंके प्रति नहीं करना चाहिये, जिसे वह अपने प्रति होना नहीं चाहता। अर्थात् जब हम दूसरोंद्वारा की गयी अपनी निन्दाको बुरा समझते हैं, सहन नहीं कर सकते, तब हमें भी दूसरोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। जैन आगमोंमें निन्दकके लिये कहा गया है कि वह पीठका मांस खानेवाले हैं अर्थात् पीठ-पीछे दूसरोंकी बुराइयोंको कहकर वह उनके दिल दुखानेवाला है। अतः निन्दा एक तरहसे हिंसाका ही एक प्रकार है; क्योंकि तन, मन, वचनसे किसीका भी किसी तरहसे दिल दुखाना, दिलको या शरीरको चोट पहुँचाना हिंसा है।

संसारमें जितने भी प्राणी हैं, सभीमें कुछ गुण और कुछ दोष रहते हैं। सर्वथा निर्दोष तो परमात्मा या परमेश्वर माना जाता है। शेष सभीमें गुणोंके साथ दोष भी रहे हुए हैं। किसीमें गुणोंका आधिक्य है तो किसीमें दोषोंका। जिसे हम एकदम दोषोंका भण्डार कहते हैं, उसमें भी कोई-न-कोई गुण या विशेषता खोज करने या ध्यान देनेपर अवश्य मिलेगी। इसलिये ज्ञानियोंने कहा है कि निन्दा या आलोचना करनी हो तो अपने दोषोंकी करो, जिससे वे दोष कम हो जायँ या नष्ट हो जायँ। दोषोंके प्रति अरुचि होना, दोषोंको दोषके रूपमें समझना और दोषोंके निवारणमें प्रयत्नशील होना—यही गुणवान् बननेका सरल उपाय है। जितने-जितने अंशोंमें दोष कम होंगे, उतने ही अंशोंमें गुण प्रकट होंगे। मनुष्य गुणी बनना चाहता है, जिससे लोग उसकी प्रशंसा करें; पर दुर्व्यसनों और दोषोंसे छूटनेका पुरुषार्थ नहीं करता, यही उसकी सबसे बड़ी कमी है।

इतना ही नहीं, मनुष्य इससे विपरीत मार्गपर भी चलता है। वह अपनी आलोचना या निन्दा न करके दूसरोंकी निन्दा करता है, जिससे उसे तनिक भी लाभ नहीं होता; अपितु बहुत बड़ी हानि होती है। जिसकी भी निन्दा की जाती है, उससे स्वाभाविक वैर-विरोध बढ़ता है, प्रीति और मैत्री टूट जाती है। वह उसे विरोधी मानकर बदला लेनेका भी प्रयत्न करता है, फिर चाहे सुयोग न मिलनेके कारण वह उसमें सफल न हो सके। निन्दक व्यक्तिको कोई भी अच्छा नहीं मानता; क्योंकि निन्दा एक बुरी आदत है। आज वह किसी एक व्यक्तिकी निन्दा करता है तो कल वह दूसरेकी भी निन्दा करेगा। आज किसी दोषी व्यक्तिकी निन्दा करता है तो वह कल अपनी उस बुरी आदतके कारण या स्वार्थभंग होनेसे निर्दोष व्यक्तिकी भी निन्दा कर बैठेगा। इस निन्दासे उस व्यक्तिके 'अहं' को ठेस पहुँचेगी, जिसकी वह निन्दा करता है; अतएव हानि तो अनेक तरहसे होती ही है, लाभ कुछ भी नहीं होता। यदि किसीके वास्तविक दोषोंकी वह निन्दा करता है तो भी उसकी निन्दासे उस व्यक्तिके दोषोंका सुधार नहीं होगा और यदि किसीकी झूठी निन्दा कर देता है तब तो वह महान् पाप है ही। दूसरेके दोषोंकी अधिक चर्चा करना, अपनेमें उन दोषोंका प्रादुर्भाव करना है। इसलिये सभी महापुरुषोंने निन्दाको महापाप बतलाया है। संत कबीर कहते हैं—

दोष पराये देख कर, चल्या हसंत हसंत।
अपने च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत॥
जै कोउ निंदे साधु कूँ, संकट आवै सोय।
नरक माँय जामें मरे, मुक्ति कबहुँ न होय॥
लोक बिचारा निंदई, जिन्ह न पाया ज्ञान।
राम नाँव राता रहे, तिनहिं न भावे आन॥
कबीर घास न निंदिये, जो पाँउ तलि होइ।
उड़ि पड़ै जब आँख में खरी दुहेला होइ॥

अर्थात् 'मनुष्य दूसरोंके दोष देखते हुए हँसता है, पर अपने दोषोंकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता, जिन दोषोंका आदि-अन्त ही नहीं है। जो व्यक्ति किसी सत्पुरुषकी निन्दा करता है, उसे अवश्य ही संकट

मिलेगा, वह नरकमें जन्मेगा और मरेगा, उसे मुक्ति कभी नहीं मिलेगी। संत कबीर कहते हैं कि अपने पैरों-तले पड़े घासकी भी निन्दा न करे; क्योंकि वह छोटा-सा तिनका भी यदि उड़कर आँखमें पड़ जायगा तो तुम्हें बहुत दु:ख होगा।' बेचारे अज्ञानी जीव दूसरोंकी निन्दा करते हैं। वास्तवमें उन्हें उसके महान् दोषका ज्ञान नहीं है। रामके नामको रटनेवालेको तो दूसरेकी निन्दा कभी रुचिकर हो ही नहीं सकती।

हम दूसरोंकी निन्दा न करें, संतोंने केवल इतनी ही शिक्षा नहीं दी, इससे आगे बढ़कर उन्होंने यह भी कहा है कि तुम्हारी निन्दा करनेवालोंके प्रति भी तुम द्वेष या घृणा न करो। वे अज्ञानी व्यक्ति स्वयं ही अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारते हैं। अत: वे करुणाके पात्र हैं, घृणा और द्वेषके नहीं। यदि हम उनके द्वारा की जानेवाली निन्दाके प्रति ध्यान न दें तो हमारे मनमें कोई बुरा भाव उत्पन्न नहीं होगा। निन्दक तो बिना कुछ लिये ही हमारे पापरूपी मैलको धोकर हमें निर्मल बनाता है। हमारी जिन बातोंकी वह निन्दा करता है, यदि वे दोष हमारेमें हैं तो उस व्यक्तिका हमें उपकार ही मानना चाहिये कि उसने हमारे दोषोंको बताकर हमें सजग कर दिया, दोषोंके दूर करनेका मौका दिया। इसीलिये संतोंने कहा है कि निन्दकको दूर न करके अपने नजदीकमें बसाओ, उससे द्वेष न कर उसका आदर करो। संत कबीरने इसी भावको नीचेके पद्योंमें बड़े सुन्दर ढंगसे कहा है—

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन साबुन बिन पानियाँ, निरमल करै सुभाय॥
निंदक दूर न कीजियै, दीजै आदर मान।
निरमल तन, मन, सब करै बक बक आन हि आन॥

महाकवि 'समय-सुन्दर'ने अपने निन्दा-परिहार गीतद्वेयमें बड़ा ही सुन्दर प्रबोध दिया है—

(१)

निंदा न कीजै जीव पराई, निंदा पापई पिंड भराई॥
निंदक निश्चय नरकहि जाई, निंदक चौथउ चंडाल कहाई॥
निंदक रसना अपबित्र होई, निंदक मांस भक्षक सम दोई॥
'समय सुन्दर' कहई निंदा न कर जो,
पर-गुण देखि हरख मन धर जो॥

(२)

निंदा मत करज्यो कोई नी पारकी रे, निंदानै बोल्याँ महा पाप रे।
वैर बिरोध बाधहि घणा रे, निंदा करता न गिणै माई बाप रे॥
दूर बलतीं काँ देखो तुम रे, पगमां बलती देखो सब कोई रे।
परनां मैलमा धोया लुगडा रे, कहौ किम ऊजला होइ रे॥
आपु सँभालो सबको आपणो रे, निंदानी मूको परि टेव रे।
थोड़ा धणा अवगुणै सब भरया रे, केहना नलिया चूयै करवा नैव रे॥
निंदा करइ ते थाय नारकी रे, तप जप कीधुं सब जाई रे।
निंदा करो तो करजो आपणी रे, जिम छुटक वारंउ थाय रे॥
गुण ग्रज्यो सहुको तणो रे, जिहं मां देखउ एक बिचार रे।
कृष्ण परइ सुख पामस्यो रे, 'समय सुन्दर' कहइ सुखकार रे॥

महात्मा बुद्धने कहा है—'जो दूसरोंके अवगुण बखानता है, वह अपना अवगुण बखानता है।' महाभारतमें कहा है—'दुर्जनोंको निन्दामें ही आनन्द आता है। सारे रसोंको चखकर कौआ गंदगीसे ही तृप्त होता है।' तामिलमें कहा गया है—'निन्दक और जहरीले साँप दोनोंके दो-दो जीभें होती हैं।' इसमाइल इबन् अबीबकरने कहा है—'सारे संसारमें विवेकभ्रष्ट वह आदमी है, जो लोगोंकी निन्दामें दत्तचित्त रहता है, जैसे मक्खी रुग्ण स्थानोंपर ही बैठा करती है।'

निन्दा एक जघन्य पाप है और एक भयंकर अभिशाप है। निन्दासे जितनी हानि स्वयं निन्दककी होती है, उतनी हानि उन व्यक्तियोंकी नहीं होती, जिनकी निन्दा की जाती है। वे व्यक्ति यदि उदार और समझदार हों तो निन्दकके द्वारा अपने दोषोंकी चर्चा सुनकर निरन्तर अपना सुधार करते रहते हैं और एक दिन नितान्त निर्दोष और निष्पाप बन जाते हैं। यदि वे व्यक्ति क्षुद्राशय होते हैं तो वे बदलेमें अपने निन्दककी निन्दा करने लगते हैं और स्वयं भी निन्दक बन जाते हैं। अपने-अपने निन्दकोंकी निन्दा कर-करके स्वयं भी निन्दक बन जानेसे ही, संसारमें निन्दकोंकी संख्या इतनी अधिक हो गयी है। निन्दा कभी भी सहायता या सुधारके भावसे नहीं की जाती। अपितु क्षुद्राशयता या बदनाम करनेकी दृष्टिसे की जाती है। निन्दककी दृष्टि किसीके गुणोंपर नहीं, दोषोंपर ही पड़ती है। निन्दक

दोषोंका ही दर्शन करता है, दोषोंका ही बखान करता है और दोषोंका ही चिन्तन करता है और जो जैसा देखता, बोलता, सुनता और सोचता है, वह स्वयं वैसा ही बन जाता है। दूसरोंके दोषोंका दर्शन, वर्णन, श्रवण और चिन्तन करते-करते निन्दक स्वयं दोषोंकी खान बन जाता है, वह स्वयं दोषोंसे भरपूर भर जाता है।

कई व्यक्ति कहा करते हैं कि 'किसीके वास्तविक दोषोंका वर्णन करनेमें क्या बुराई है? वह तो सच्ची बात है, निन्दा नहीं।' पर यदि किसीके दोषोंको सुधरवानेकी हमारी भावना है तो हम उन दोषोंका प्रकाशन दूसरोंके आगे क्यों करें? उसी व्यक्तिको ही एकान्तमें प्रेमपूर्वक क्यों न समझायें? यदि हम वैसा ही करते हैं तो वास्तवमें वह एक उपकारका काम है, पर साधारणतया उस व्यक्तिके सामने उसके दोषोंको कहते हमें संकोच या भय होता है और दूसरोंके सामने मूल व्यक्तिके परोक्षमें बढ़ा-चढ़ाकर उसके दोषोंका उद्‌घाटन करते हैं। यह निन्दा ही है। निन्दा और समालोचनामें बड़ा अन्तर है, निन्दा व्यक्तिकी की जाती है और व्यक्तिगत द्वेषके कारण की जाती है। समालोचना कृति, रचना, सिद्धान्त, मन्तव्य और मान्यताकी की जाती है। ईर्ष्या-द्वेषसे रहित होकर सदाशयताके साथ ही की जाती है।'

निन्दक और समालोचकमें भी अन्तर है। जो ईर्ष्या-द्वेषके वशीभूत होकर किसीकी व्यक्तिगत निन्दा करता है, वह निन्दक है और निष्पक्ष होकर सदाशयताके साथ शालीनतापूर्वक किसीकी कृति, रचना, सिद्धान्त, मन्तव्य या मान्यताकी विवेचना करता है, उसे समालोचक कहते हैं। जब समालोचक समालोचना करता हुआ पक्षपात या द्वेषके कारण निराधार और मिथ्या दोषारोपण करके सम्बन्धित व्यक्तिके व्यक्तित्वपर आक्रमण करता है, तब वह समालोचक समालोचक न रहकर निन्दक बन जाता है और उसकी समालोचना समालोचना न होकर निन्दा हो जाती है।

समालोचना एक परमोत्कृष्ट कला ही नहीं है, एक परम पुनीत साधना भी है। आस्तिक, धर्मात्मा, निरभिमान, अनहंकार, अनासक्त, निःस्पृह, निर्मल, साधनाशील, बहुज्ञ और बहुश्रुतजन ही समालोचकके पुनीत आसनको सुशोभित कर सकते हैं। सच्चा समालोचक बनना एक कठिन साधना है, तो सच्ची समालोचना करना एक अलौकिक सिद्धि है।

संक्षेपमें लिखनेका सारांश यही है कि आलोचना हम अपने दोषोंकी करें, दूसरोंके तो गुण ही ग्रहण करें। 'परायी निन्दा करना महापाप है'। इस वाक्यको सदा ध्यानमें रखें।

मौन व्याख्यान

एक दिनकी बात है, योगिराज गम्भीरनाथ अपने कपिलधारा पहाड़ीवाले आश्रममें अत्यन्त शान्त और परम गम्भीर मुद्रामें बैठे हुए थे। वे आत्मानन्दके चिन्तनमें पूर्ण निमग्न थे। उसी सयम उनके पवित्र दर्शनसे अपने-आपको धन्य करनेके लिये कुछ शिक्षित बंगाली सज्जन आ पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक योगिराजसे उपदेश देनेके लिये निवेदन किया। योगिराजके अधरोंपर मुसकानकी मृदुल शान्ति थी; उनकी दृष्टिमें कल्याणप्रद आशीर्वादका अमृत था; उन्होंने बड़ी आत्मीयतासे उन सज्जनोंको आसन ग्रहण करनेका संकेत किया।

सज्जनोंने उपदेशके लिये बड़ा आग्रह किया; योगिराजकी विनम्रता मुखरित हो उठी—'वास्तवमें मैं कुछ भी नहीं जानता, आपको मैं क्या उपदेश दूँ।' आगत सज्जन महापुरुषकी विनम्रतासे बहुत प्रभावित हुए, पर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि बाबा गम्भीरनाथ आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचे हुए हैं। अतएव उनके हृदयमें योगिराजके श्रीमुखसे उपदेश श्रवण करनेकी उत्सुकता कम न हो सकी। उन्होंने अपना आग्रह फिर उपस्थित किया और योगिराजने भी विनम्रताके साथ अपने पहले उत्तरको दुहरा दिया। उनके उत्तरमें किसी प्रकारका दम्भ या दिखावा नहीं था; योगिराजने मौन संकेत किया कि 'यदि वे वास्तवमें जिज्ञासु हैं तो मेरे आचरणको देखें तथा सत्य—वस्तु-तत्त्वकी खोज अपने भीतर करें।'

संत-चरित—

दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजी महाराज

(श्रीआगेरामजी शास्त्री)

दण्डी स्वामी श्रीकेवलाश्रमजीका जन्म एक अति निर्धन ब्राह्मण-परिवारमें कुरुक्षेत्र भूमिके अन्तर्गत जिला जीन्दमें रामहृद (रामराय)-में हुआ था। वे बाल ब्रह्मचारी और बहुत कम पढ़े-लिखे थे, परंतु संतोंके मुखसे सुने शास्त्रोंपर विश्वास करते थे। ब्रह्मचारी जीवन उन्होंने अपने जन्म-स्थान रामरायमें ही माता कृष्णा देवीके आश्रममें बिताया। माताजीके देह त्याग देनेके बाद उनको कृष्णाधाम आश्रम रामराय जिला जीन्द हरियाणाकी गद्दीपर बिठा दिया गया, परंतु मात्र एक माहके बाद ही वे रातको आश्रमको छोड़ ऋषिकेशमें आकर संन्यास लेकर मौन धारण करके रहने लगे। आश्रमके लोग ढूँढ़ते रहे। हरिद्वारमें भी उनका कृष्णाधाम आश्रम 'खड़खड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर उन्होंने देवीस्वरूप शास्त्रीजीको प्रबन्धक बनाया था।

शास्त्रीजीने उनको ढूँढ़ लिया तथा उनसे आग्रह किया, जैसे आप ऋषिकेशमें रह रहे हैं, वैसे ही आप अपने आश्रममें रहिये। इसपर वे हरिद्वार आ गये। दुर्भाग्यसे देवीस्वरूप शास्त्रीजीका निधन हो गया। शास्त्रीजीके निधनके बाद आश्रमको स्वामी केवलाश्रमजी महाराजको सँभालना पड़ा। वे नित्य-प्रति गंगा-स्नान करते थे। आश्रमके अधिष्ठाता होते हुए भी भिक्षा करके भोजन करते थे। उत्तरी हरिद्वारमें उस समय पशु-अस्पताल नहीं था। जिस किसी आश्रमकी गाय बीमार हो जाती, वे लोग स्वामीजीको बुलाकर ले जाते। वे गायके स्वस्थ होनेकी दवाई एवं टोटके जानते थे। कोई भी व्यक्ति बीमार गायके उपचारके लिये उन्हें बुलाने आता तो वे भजन छोड़कर तुरन्त उसके साथ चले जाते।

एक दिन मैंने कहा, भजन करनेके बाद चले जाना। उन्होंने कहा गोसेवा भी भजन ही है। वे आश्रमकी गाय स्वयं चराने जाते थे। एक दिन उनको साँपने काट लिया। आकर कहने लगे साँपने मुँह लगा दिया। साँपका दोष नहीं था। मेरा ध्यान गायकी तरफ था। मेरा पैर साँपपर पड़ गया। हमने कहा, अस्पताल चलो। जहाँ सर्पने काटा था, वहाँ नीला एवं बहुत बड़ा निशान पड़ गया था। कहा—ठीक हो जायगा। चिन्ता ना करो, बहुत आग्रह करनेपर भी अस्पताल नहीं गये। कहने लगे, 'अभी मेरी मृत्यु नहीं है। तुम चिन्ता न करो'। कभी भी हमने उनको क्रोध आदि करते हुए नहीं देखा। गंगास्नान, गोसेवा, भजन उनके नित्यके कार्य थे। आश्रममें अनेक दण्डी स्वामी महात्मा रहते थे। उनमें बहुत-से अतिवृद्ध महात्मा भी थे। वे उनकी नित्य-प्रति स्वयं सेवा करते थे। बीमार होनेपर सभी महात्माओंकी स्वयं सेवा करते थे।

वर्ष १९८७ में श्रीस्वामीजी हरियाणा गये थे। वहाँ एक पागल कुत्तेने काट लिया। उनको अस्पताल लेकर गये, वहाँपर संयोगसे कुत्तेके काटनेके उपचारसम्बन्धी इंजेक्शन नहीं मिले। दुबारा बहुत प्रयास किया गया, पर वे अस्पताल नहीं गये। कहा—यदि प्रभु चाहते तो मैं अस्पताल गया था। इंजेक्शन मिल जाता, उनकी अब यही इच्छा है। वे जीवनमें बीमार पड़ते तो कभी दवाई नहीं लेते। अपने-आप ही काढ़ा आदि बनाकर पी लेते थे। दवाई कभी नहीं ली। महीनोंके बाद हरियाणासे आया था। जैसे मेरी आवाज सुनी, कमरेसे बाहर आकर कहने लगे—भाई, आज जितनी दवाई देनी है, दे दे। जिस डॉक्टरको दिखाना हो दिखा ले। नहीं तो कहेगा कि स्वामीजीको दवाई दिला देते तो बच जाते। अब तू अपने मनकी कर ले।

उस समय आश्रममें गाड़ी नहीं थी। हम टैम्पो करके उनको जी०डी० अस्पतालमें ले गये। डॉक्टरने देखते ही कह दिया पागल कुत्तेके काटनेसे होनेवाली बीमारी हो गयी है। अब ये बच नहीं सकते। हम वापस आश्रममें ले आये और सबसे पीछेके कमरेमें लिटा दिया। सभी आश्रमवाले पता लगते ही आ गये। उनके प्रति सभी लोग श्रद्धा रखते थे। तीन-चार आश्रमवालोंने अपने स्तरसे तीन-चार डॉक्टर, जो उस समय बहुत प्रसिद्ध थे, बुला लिये। सभी डॉक्टरोंने एक मतसे

कहा—ये ७२ घंटे तड़पेंगे, दीवारोंपर सिर मारेंगे, काटने दौड़ेंगे, जिसको भी इनके नाखून, लार या दाँत लग जायगा, वे भी ऐसे ही मरेंगे। अत: तुरन्त इसको जी०डी० अस्पतालमें दाखिल कराओ। जब डॉक्टर लोग इस प्रकारकी बात कर रहे थे, तो श्रीस्वामीजीने एक छात्रको भेजकर मुझे बुलवाया तथा कहा—भाई, इन डॉक्टरोंकी बातोंमें नहीं आना, मेरे कारण आश्रममें कोई हानि नहीं होगी। मुझे सायं ०५ बजेतक जीना है। अगर तेरा दिल मानता है तो मुझको आश्रममें ही मरने दे, नहीं तो मेरेको गंगाजीके किनारे डाल दो। अस्पताल नहीं भेजना। वे मात्र 'ओम्-ओम्' बोल रहे थे। जब उनको बहुत अधिक कष्ट होता था तो 'ओम्-ओम्' करके दीवारकी तरफ मुख कर लेते, फिर दर्द कम होते ही 'ओम-ओम' करके मुँह इधर कर लेते।

डॉक्टरोंने कहा था कि पानी देखते ही बेहोश हो जायँगे, परंतु उन्होंने एक कमण्डलु गंगाजल पीया। उसी दिन परम पूज्य शंकराचार्य दण्डी स्वामी माधवाश्रमजी महाराज हरिद्वारमें भागवतकी कथा कर रहे थे। वे भी इनके अन्तिम दर्शनोंके लिये आये और उन्होंने कथामें कह दिया ओ समाजके लोगो! अगर तुम्हें भजनका प्रभाव देखना है तो कृष्णाधाम आश्रम खड़खड़ी हरिद्वारमें चले जाओ। अगर ये बीमारी तुम किसीको भी होती तो तड़पते, रोते, बिलखते, परंतु एक सन्त इस बीमारीसे संघर्ष कर रहे हैं। सिवाय 'ओम्'के एक शब्द नहीं बोल रहे। शंकराचार्यजीके इतना कहनेके बाद कृष्णाधाममें मेला लग गया। हजारों लोग आते उनके दर्शन करके चले जाते, उनका कमरा अन्तिम समयतक खुला रहा। दो महात्मा उनकी सेवाके लिये उनके पास रहे, जो लोग आ रहे थे। उनके पैर छूकर जाते, उनसे किसीको भय नहीं लगा और ना ही वे 'ओम्-ओम्'के सिवाय कुछ बोले और उन्होंने आने-जानेवालोंका ध्यान भी नहीं किया। उस समय मेरठसे पं० फूलचन्दजी आये हुए थे। उनको बुलाकर कहने लगे पण्डितजी मुहूर्त देखो। पण्डितजीने कहा—किस विषयका मुहूर्त देखूँ? कहने लगे, मेरा मुहूर्त तो ५ बजेका है। इससे पहले मरनेका मुहूर्त बनता हो तो मैं पहले चला जाऊँ। जागेराम शास्त्री बहुत दुखी हो रहा है। पण्डितजी कुछ नहीं बोले, रोने लग गये, ठीक ५ बजे एक सन्त आये। वे आकर रोने लगे। स्वामीजी कहने लगे, सन्तजी! क्यों रोते हो, मुझे कहने लगे—तेरे आश्रममें सन्तजी आये हैं। इनको दूध पिला। यह कहकर फिर 'ओम्-ओम्' कहने लगे। इतनेमें सन्तको गेटतक छोड़कर आया।

उस समय उनके पास दण्डी स्वामी श्रीमुरारी आश्रम तथा दण्डी स्वामी श्रीरामानन्द आश्रम सेवामें थे। स्वामीजीके कहनेपर उन्होंने उन्हें नीचे आसन बिछाकर बैठाया। पद्मासन उन्होंने स्वयं लगा लिया। जब कमण्डलुसे उनको गंगाजल पिला रहे थे तब मैंने कहा—नीचे क्यों बिठाया? अभी मैं पूरा बोल भी नहीं पाया कि उन्होंने 'ओम-ओम्' का उच्चारण किया और गंगाजल मुखमें लेते ही उन्होंने प्राण छोड़ दिये। स्वामी मुरारी आश्रमजी कहने लगे—ये तो सदाके लिये ही बैठ गये। उस समयतक तीनों डॉक्टर आश्रममें ही थे। डॉक्टरोंने स्वयं कहा कि ये हमारे मेडिकल साइंसके एकदम विपरीत अद्भुत घटना घटी है।

एक डॉक्टर बंगाली सिपाहा नामसे थे। कहने लगे—मैंने जीवनमें ऐसी घटना कभी नहीं देखी। तीनों डॉक्टरोंने स्वामीजीके शरीरको प्रणाम किया। उस घटनासे यह सिद्ध होता है। कर्मके भोग तो हर हालतमें सभी महापुरुषोंको भोगने पड़ते हैं। कुत्तेका काटना तथा वह बीमारी होना तो कर्मके भोग निश्चित थे। परंतु गौसेवा, श्रीगंगासेवा, सन्त-सेवा, भगवद्भजन डॉक्टरोंके अनुसार मेडिकल साइंसको मात दे सकते हैं। आज श्रीदण्डी स्वामी केवलाश्रमजी महाराजके मात्र आशीर्वादसे कृष्णाधाम अन्नक्षेत्रमें सैकड़ों महात्मा और जरूरतमन्द नि:शुल्क भोजन करते हैं। दान देनेवाले भी स्वत: आते हैं और खानेवाले भी स्वत: आते हैं। यह भगवान्‌के भजन, गोसेवा, गंगासेवा, सन्तसेवाका अनुपम प्रभाव है।

प्रेरणा-पथ—

परिस्थितिका सदुपयोग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रत्येक परिस्थिति प्राकृतिक न्याय है। उसके सदुपयोगमें ही सभीका हित है, किंतु हमसे भूल यह होती है कि हम परिस्थिति-परिवर्तनके लिये अथवा अनुकूल परिस्थितिको सुरक्षित बनाये रखनेके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। यद्यपि कोई भी परिस्थिति सर्वांशमें अनुकूल नहीं होती और न सर्वांशमें प्रतिकूल ही होती है। प्रत्येक परिस्थितिमें जो करना चाहिये, उसको करनेकी सामर्थ्य विद्यमान होती है और जो नहीं करना चाहिये, उसके त्यागकी सामर्थ्य भी रहती है, परंतु हम इस बातको भूल जाते हैं कि प्रस्तुत परिस्थितिमें क्या करना चाहिये। जो करते रहते हैं, बस, उसीको पकड़े रहते हैं। नहीं तो, यह करना ही है, परंतु कर पाते नहीं और फिर पश्चात्ताप करते हैं। ऐसी परिस्थितिमें एक बातका निर्णय करना है और वह हरेक व्यक्तिको अपने-आप करना है, दूसरोंके द्वारा नहीं कि कोई भी परिस्थिति क्या ऐसी हो सकती है, जिसके बिना हम रह नहीं सकते? यदि आपको ऐसा मालूम होता हो कि सचमुच कोई ऐसी परिस्थिति हो सकती है तो सोचिये कि उस परिस्थितिका वियोग तो नहीं होगा? पर वियोग होता ही है। जब वियोग होता है, तब कोई परिस्थिति ऐसी हो ही नहीं सकती, जिसके बिना हम नहीं रह सकते हों।

यदि कोई मुझसे यह पूछता कि भाई, तुम आँखोंके बिना रह सकते हो? तो क्या मैं कभी यह माननेके लिये राजी होता कि मैं आँखोंके बिना रह सकता हूँ? किंतु देखिये, आँखोंके बिना रह रहा हूँ। उसी प्रकार हम लोग सदैव इस बातका ध्यान रखें कि कोई परिस्थिति सचमुच ऐसी है ही नहीं, जिसके बिना हम नहीं रह सकते, या जो हमारे बिना नहीं रह सकती। हर परिस्थिति हमारे बिना रह सकती है और हर परिस्थितिके बिना हम रह सकते हैं। लेकिन जब, 'परिस्थितिमें ही जीवन है'—ऐसा विश्वास होता है, तब प्रतिकूल परिस्थितिका भय पैदा हो जाता है और अनुकूल परिस्थितिकी आशा उत्पन्न हो जाती है। हम चाहते हैं कि अनुकूल परिस्थिति बनी रहे और तब तो आप यह कह सकते थे कि आपकी बात ठीक है। आप कहें कि कोई-न-कोई परिस्थिति तो रहती ही है तो जो परिस्थिति रहती है, उसमें हमें क्या करना है? इस बातको अपने सामने रखना चाहिये। वह चाहे जैसी भी परिस्थिति हो। जो शक्ति आप परिस्थितिको परिवर्तन करनेके लिये लगाते हैं, यदि वही शक्ति आप परिस्थितिके सदुपयोगमें लगा दें तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक परिस्थितियोंसे अतीत जो जीवन है, उसमें या तो श्रद्धा हो जाय या उसकी प्राप्ति हो जाय। दोनों ही बातें हो सकती हैं। श्रद्धा हो जायगी तो एक नवीन लालसा जाग्रत् होगी, एक नवीन जिज्ञासा जाग्रत् होगी और अनुभूति हो जायगी। तब यथेष्ट विश्राम मिलेगा और ये ही दो बातें जीवनमें उपयोगी हैं या तो आपको विश्राम मिल जाय या आपके जीवनमें एक ऐसी उत्कट लालसा जग जाय, जो सभी कामनाओंको खा जाय और सभी आक्रमणोंपर विजयी हो जाय।

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः॥

नदियाँ स्वयं जल नहीं पीतीं, वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते तथा मेघ अपने लिये नहीं बरसता। सज्जनोंकी सम्पत्ति तो परोपकारके लिये ही होती है।

गो-महिमा

एक बार नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछा—नाथ! आपने बताया है कि ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के मुखसे हुई है; फिर गौओंकी उससे तुलना कैसे हो सकती है? विधाता! इस विषयको लेकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! पहले भगवान्‌के मुखसे महान् तेजोमय पुंज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण—ये पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए। मैंने सम्पूर्ण लोकों और भुवनोंकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें एक वेदसे चारों वेदोंका विस्तार किया। अग्नि और ब्राह्मण देवताओंके लिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य (घी) गौओंसे उत्पन्न होता है; इसलिये ये चारों ही इस जगत्‌के जन्मदाता हैं। यदि ये चारों महत्तर पदार्थ विश्वमें नहीं होते तो यह सारा चराचर जगत् नष्ट हो जाता। ये ही सदा जगत्‌को धारण किये रहते हैं, जिससे स्वभावतः इसकी स्थिति बनी रहती है। ब्राह्मण, देवता तथा असुरोंको भी गौकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि गौ सब कार्योंमें उदार तथा वास्तवमें समस्त गुणोंकी खान है। वह साक्षात् सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है। सब प्राणियोंपर उसकी दया बनी रहती है। प्राचीन कालमें सबके पोषणके लिये मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है और समस्त संसारको पवित्र कर देती है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—इन पंचगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गौके दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही और घी खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है। अन्न आदि पाँच रात्रितक, दूध सात रात्रितक, दही दस रात्रितक और घी एक मासतक शरीरमें अपना प्रभाव रखता है। जो लगातार एक मासतक बिना गव्यका भोजन करता है, उस मनुष्यके भोजनमें प्रेतोंको भाग मिलता है, इसलिये प्रत्येक युगमें सब कार्योंके लिये एकमात्र गौ ही प्रशस्त मानी गयी है। गौ सदा और सब समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली है।

जो गौकी एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जैसे देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी वन्दनीय हैं, जिस प्रकार भगवान् लक्ष्मीपति सबके पूज्य हैं, उसी प्रकार गौ भी वन्दनीय और पूजनीय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौएँ दूध और घी प्रदान करनेवाली हैं। वे घृतकी उत्पत्ति-स्थान और घीकी उत्पत्तिमें कारण हैं। वे घीकी नदियाँ हैं, उनमें घीकी भँवरें उठती हैं। ऐसी गौएँ सदा मेरे घरपर मौजूद रहें। घी मेरे सम्पूर्ण शरीर और मनमें स्थित हो। 'गौएँ सदा मेरे आगे रहें। वे ही मेरे पीछे रहें। मेरे सब अंगोंको गौओंका स्पर्श प्राप्त हो। मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।' इस मन्त्रको प्रतिदिन सन्ध्या और सबेरेके समय शुद्ध भावसे आचमन करके जपना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके सब पापोंका क्षय हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जैसे गौ आदरणीय है, वैसे ब्राह्मण; जैसे ब्राह्मण हैं वैसे भगवान् विष्णु। जैसे भगवान् श्रीविष्णु हैं, वैसी ही श्रीगंगाजी भी हैं। ये सभी धर्मके साक्षात् स्वरूप माने गये हैं। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें गौ नहीं है, वह बन्धुरहित गृह है। छहों अंगों, पदों और क्रमोंसहित सम्पूर्ण वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोंमें भगवान् श्रीशंकर और श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं। गौओंके उदरमें कार्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें इन्द्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिह्वामें सरस्वती देवी, अपान (गुदा)-में सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गंगाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वाम पार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गन्धर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रँभानेकी आवाजमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र निवास करते हैं। जो प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके स्थूल पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलको सिरपर धारण करता है, वह मानों तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। **[पद्मपुराण]**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

राम और शिवमें कोई छोटा-बड़ा नहीं

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए, मेरे उत्तरसे आपको सन्तोष हुआ, सो यह आपका सौजन्य है।

रामायणमें भगवान् रामने जगह-जगह शंकरका स्मरण किया, यह बिलकुल और सर्वथा सत्य है। भगवान् रामके इष्टदेव शंकर और शंकरके इष्टदेव राम, यह तो रामायणमें आपको स्थल-स्थलपर मिलेगा, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

भगवान् रामने कैलासमें जाकर जो शिवजीसे विवाह करनेके लिये कहा और वरके रूपमें माँग पेश की, यह बिलकुल ठीक है; परंतु वहाँ देखिये शिवजी क्या कह रहे हैं—

नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥
अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥

—इसपर तुलसीदासजी क्या कहते हैं—

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥

प्रसंग देखनेसे यही सिद्ध होगा कि इनमें छोटे-बड़ेकी कल्पना उपासक अपने इष्टके अनुसार कर सकता है। वास्तवमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

आपने पूछा कि योगिराज, जिन्होंने हलाहल विषका पान किया, वे कौस्तुभमणि और लक्ष्मीको धारण करनेवालेका ध्यान करें अथवा कौस्तुभमणि और लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान् विष्णु हलाहल विष-पान करनेवालेका ध्यान करें। इसका उत्तर विस्तृत रूपमें माँगा। सो इसका असली उत्तर तो ऊपर दे दिया गया है। आप थोड़ी गम्भीरतासे विचार करेंगे तो मालूम होगा कि शंकरजी हलाहल-पान करनेमें भी भगवान् रामका ही प्रभाव मानते हैं, उसमें वे अपना बल नहीं मानते। तुलसीदासजीने कहा है—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥

अधिक विस्तारकी आवश्यकता इसलिये नहीं है कि रामायणमें इस बातको स्पष्ट करनेमें तुलसीदासजीने कोई कमी नहीं रखी है। अतः गम्भीरतापूर्वक विचार करनेपर आप स्वयं समझ लेंगे। शेष प्रभुकृपा।

(२)

निर्बीज समाधि और सबीज समाधि

सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला, आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है। निर्बीज समाधि उसे कहते हैं, जिसमें सब प्रकारके कर्म-संस्कारोंका सर्वथा निरोध हो जाता है। इसका वर्णन योगदर्शनके समाधि-पादके अन्तमें आया है। इसीको असम्प्रज्ञातयोग, धर्ममेघ-समाधि, कैवल्यपद, द्रष्टाकी स्वरूप-प्रतिष्ठा आदि नामोंसे योगदर्शनमें कहा है।

सबीज समाधिके मुख्य दो भेद हैं—एक सविकल्प, जिसका वर्णन सवितर्क और सविचारके नामसे आया है। इसका विस्तार योगदर्शन-समाधि-पादके सूत्र ४१—४३ में आया है। उसी प्रकरणमें निर्वितर्क और निर्विचारके नामसे निर्विकल्प-समाधिका वर्णन है।

लेन-देन, जहाँतक हो, भले मनुष्योंके साथ करना चाहिये तथा कानूनकी पाबन्दी पहलेसे ही कर लेनी चाहिये, ताकि झगड़ा न पड़े। बनावटी गवाह खड़ा करना तो झूठ ही है, यह कैसे उचित हो सकता है। सच्चा मामला तभी खारिज होता है, जब कोई पहले की हुई बुराईका दण्ड मिलनेवाला होता है। शेष प्रभुकृपा।

(३)

'होइहि सोइ जो राम रचि राखा' का तात्पर्यार्थ

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका पत्र मिला, समाचार मालूम हुए।

आपने तुलसीदासजीकी यह चौपाई लिखी कि—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा॥

सो यह चौपाई नवीन कर्म करनेके लिये नहीं है। यह तो केवल पूर्वकृत-कर्मोंके फल-भोगको लेकर है। भाव यह कि मनुष्य फलभोगमें सर्वथा परतन्त्र है। उसको जो सुख या दुःख जिस प्रकार प्रारब्ध कर्मफलके

अनुसार होता है, वैसा ही होगा। पर नवीन कर्म करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र भी है। इसीलिये भगवान्‌ने मनुष्यको बुराई और भलाईको समझनेके लिये विवेक दिया है। अत: मनुष्यको चाहिये कि जो कुछ करे, विवेकके प्रकाशमें करे और वही करे जो उसे करना चाहिये, पाप-कर्म भूलकर भी न करे, यदि करेगा तो उसकी सारी जिम्मेदारी करनेवालेकी है और उसका दण्ड उसे अवश्य भोगना पड़ेगा; क्योंकि भगवान्‌ने हरेक मनुष्यके लिये कर्तव्यका विधान कर दिया है और उसे समझनेके लिये मानवको विवेकशक्ति भी दे दी है।

आपने जो उदाहरण दिये, वे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो, किसी घबराये हुए कविने भगवान्‌से प्रणयकोपमें प्रार्थना की है। ये कोई शास्त्रीय प्रमाणरूप वाक्य नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ३ श्लोक ३४ से ४३ तकका प्रकरण देखिये। उसमें अर्जुनके पूछनेपर भगवान्‌ने इस विषयको स्पष्ट किया है तथा अध्याय २ श्लोक ४७ में भी स्पष्ट कहा है कि तेरा कर्म करनेमें अधिकार है एवं फलमें अधिकार नहीं है। अत: यह समझना चाहिये कि तुलसीदासजीका कहना फलभोगके विषयमें है, नवीन कर्म करनेके विषयमें नहीं। शेष प्रभुकृपा।

(४)

अर्जुनका मोह

महोदय! सादर हरिस्मरण! आपका पत्र यथासमय मिल गया था। आपकी शंकाओंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

शास्त्रोंमें आततायियोंको मारनेमें पाप नहीं बताया है। इस बातको अर्जुन भी जानता था, पर उसे अपने सामने सब अपने ही कुटुम्बी लोग खड़े दीख रहे थे। अत: मोहके कारण अर्जुनको उनका मारना पापकर्म मालूम होता था, जिसकी व्याख्या स्वयं अर्जुनने कुलघातसे होनेवाले परिणामका प्रदर्शन करते हुए की है।

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें आत्माको नित्य जन्म-मरणसे रहित बताया है, यह बिलकुल सत्य है एवं श्रुतिमें जो आत्महत्या करनेवालोंके नरकमें जानेकी बात कही है, वह भी ठीक है; क्योंकि 'आत्मा' शब्दका कोई एक ही अर्थ नहीं होता। गीतामें जो जन्म-मरणसे रहित आत्माका वर्णन है, वह विशुद्ध चेतन आत्मतत्त्वका वर्णन है और श्रुतिमें 'आत्म' शब्द निजका वाचक है। जो मनुष्य अपना कर्तव्य-पालन न करके मनुष्य-जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं, अपना अध:पतन कर रहे हैं, उनको वहाँ 'आत्महत्यारा' कहा गया है। आत्महत्यासे यदि आत्माके नाशकी बात होती तो यह कहना ही नहीं बनता कि वे घोर अन्धकारसे भरपूर लोकोंमें जाते हैं। यदि उनका नाश (अभाव) ही हो जाता तो जाता कौन?

अर्जुन भगवान्‌का सखा था, यह बात भगवान् और स्वयं अर्जुनने भी बार-बार स्वीकार की है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। पर भगवान्‌के उस भयानक स्वरूपको देखकर वह उस सखाभावको भूल गया और भयभीत हो गया। इसीलिये तो भगवान्‌ने कहा है—यह अद्भुत रूप मैंने तुमपर प्रसन्न होकर दिखाया है। इसे देखकर तुम्हें भय और व्यथा नहीं होनी चाहिये।

गीताके तीसरे अध्यायमें 'ज्ञान' और 'ज्ञानी' शब्दका कई जगह प्रयोग हुआ है। वहाँ सभी जगह किसी एक ही अर्थमें उसका प्रयोग हुआ हो, ऐसी बात नहीं है। कहीं तत्त्वज्ञानीके अर्थमें (३। ३३, ४३), कहीं विवेकज्ञानके अर्थमें (३। ३९) और कहीं ज्ञानयोगके अर्थमें (३। ३) हुआ है। अत: आप कौन-से श्लोकमें उल्लिखित ज्ञानका स्वरूप जानना चाहते हैं, सो लिखियेगा।

जिस ज्ञानको कामसे आवृत बताया है, वह तो विवेक है। जिस ज्ञानसे कामको मारनेकी बात कही है, वह तत्त्वज्ञान है। अत: पूर्वापरके प्रकरणसे ज्ञानका स्वरूप समझ लेना चाहिये।

तुलसीदासजीने जो यह कहा है कि कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है, यह कथन सकाम कर्मके लिये ही है। निष्कामभावसे या कर्तापनके अभिमानसे रहित होकर किये जानेवाले कर्मोंका फल भोगना पड़े, ऐसी बात नहीं है। रामायणमें भी निष्काम कर्मोंकी बड़ाई की गयी है तथा जो कर्म भगवान्‌के समर्पण कर दिये जाते हैं, उनका फल भोगना नहीं पड़ता। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ६। १६ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा दिनमें १०। २५ बजेतक	१६ अगस्त	× × × × ×
द्वितीया रात्रिमें ८। १९ बजेतक	शनि	शतभिषा ” १। १ बजेतक	१७ ”	**सिंह-संक्रान्ति** रात्रिमें ३। ८ बजे।
तृतीया,, १०। १९ बजेतक	रवि	पू०भा० ” ३। ३८ बजेतक	१८ ”	**भद्रा** दिनमें ९। १९ बजेसे रात्रिमें १०। १९ बजेतक, **मीनराशि** दिनमें ८। ५९ बजेसे, **कज्जलीतीज।**
चतुर्थी ” १२। ८ बजेतक	सोम	उ० भा० सायं ६। ५ बजेतक	१९ ”	**मूल** सायं ६। ५ बजेसे, **संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८। ५७ बजे।
पंचमी ” १। ३८ बजेतक	मंगल	रेवती रात्रिमें ८। १९ बजेतक	२० ”	**पंचक समाप्त** रात्रिमें ८। १९ बजे।
षष्ठी ” २। ३९ बजेतक	बुध	अश्विनी ” १०। २ बजेतक	२१ ”	**मूल** रात्रिमें १०। २ बजेतक, **भद्रा** रात्रिमें २। ३९ बजेसे, **श्रीचन्द्रषष्टीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०। ४ बजे, **हलषष्ठी (ललहीछठ)।**
सप्तमी ” ३। १५ बजेतक	गुरु	भरणी ” ११। २१ बजेतक	२२ ”	**भद्रा** दिनमें २। ५७ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिशेष ५। ३३ बजेसे।
अष्टमी ” ३। १८ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका ” १२। १० बजेतक	२३ ”	**श्रीकृष्णजन्माष्टमी, गोकुलाष्टमी।**
नवमी ” २। ५१ बजेतक	शनि	रोहिणी ” १२। २८ बजेतक	२४ ”	**उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत।**
दशमी ” १। ५५ बजेतक	रवि	मृगशिरा ” १२। १८ बजेतक	२५ ”	**भद्रा** दिनमें २। २४ बजेसे रात्रिमें १। ५५ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें १२। ४४ बजेसे।
एकादशी ” १२। ३४ बजेतक	सोम	आर्द्रा ” ११। ४२ बजेतक	२६ ”	**जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ” १०। ५२ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ” १०। ४६ बजेतक	२७ ”	**कर्कराशि** सायं ५। ० बजेसे।
त्रयोदशी ” ८। ५१ बजेतक	बुध	पुष्य ” ९। ३१ बजेतक	२८ ”	**मूल** रात्रिमें ९। ३१ बजेसे, **भद्रा** रात्रिमें ८। ५१ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी सायं ६। ३८ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ” ८। ४ बजेतक	२९ ”	**भद्रा** दिनमें ७। ४५ बजेतक, **सिंहराशि** रात्रिमें ८। ४ बजेसे।
अमावस्या दिनमें ४। १४ बजेतक	शुक्र	मघा सायं ६। २७ बजेतक	३० ”	**मूल** सायं ६। २७ बजेतक, **कुशोत्पाटिनी अमावस्या।**

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १। ४७ बजेतक	शनि	पू०फा० सायं ४। ४६ बजेतक	३१ अगस्त	**कन्याराशि** रात्रिमें १०। २१ बजेसे, **पू०फा० का सूर्य** रात्रिमें ११। ४९ बजे।
द्वितीया ” ११। २१ बजेतक	रवि	उ०फा० दिनमें ३। ८ बजेतक	१ सितम्बर	× × × × ×
तृतीया ” ९। १ बजेतक	सोम	हस्त ” ९। ३५ बजेतक	२ ”	**भद्रा** रात्रिमें ७। ५५ बजेसे, **हरितालिका (तीज) व्रत, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध, तुलाराशि** रात्रिमें १२। ५४ बजेसे।
चतुर्थी प्रात: ६। ५० बजेतक	मंगल	चित्रा ” १२। १४ बजेतक	३ ”	**भद्रा** प्रात: ६। ५० बजेतक, **ऋषिपंचमी।**
षष्ठी रात्रिमें ३। १७ बजेतक	बुध	स्वाती ” ११। ८ बजेतक	४ ”	**लोलार्कषष्ठी-व्रत, वृश्चिकराशि** रात्रिशेष ४। ३४ बजेसे।
सप्तमी ” २। २ बजेतक	गुरु	विशाखा ” १०। २३ बजेतक	५ ”	**भद्रा** रात्रिमें २। २ बजेसे।
अष्टमी ” १। १३ बजेतक	शुक्र	अनुराधा ” ९। ५९ बजेतक	६ ”	**श्रीराधाष्टमीव्रत, महर्षि दधीचि-जयन्ती, भद्रा** दिनमें १। ३८ बजेतक, **मूल** दिनमें ९। ५९ बजेसे।
नवमी ” १२। ५५ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा ” १०। ४ बजेतक	७ ”	**धनुराशि** दिनमें १०। ४० बजेसे।
दशमी ” १। ८ बजेतक	रवि	मूल ” १०। ३८ बजेतक	८ ”	**महारविवारव्रत, मूल** मूल दिनमें १०। ३८ बजेतक।
एकादशी ” १। ५४ बजेतक	सोम	पू०षा० ” ११। ४४ बजेतक	९ ”	**भद्रा** दिनमें १। ३२ बजेसे रात्रिमें १। ५४ बजेतक, **मकरराशि** सायं ६। ७ बजेसे, **पद्मा एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ” ३। ६ बजेतक	मंगल	उ०षा० ” १। १७ बजेतक	१० ”	**श्रीवामनद्वादशीव्रत।**
त्रयोदशी रात्रिशेष ४। ४३ बजेतक	बुध	श्रवण ” ३। १७ बजेतक	११ ”	**प्रदोषव्रत, कुम्भराशि** रात्रिशेष ४। २६ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ४। २६ बजे।
चतुर्दशी अहोरात्र	गुरु	धनिष्ठा सायं ५। ३७ बजेतक	१२ ”	**अनन्तचतुर्दशीव्रत।**
चतुर्दशी प्रात: ६। ३८ बजेतक	शुक्र	शतभिषा रात्रिमें ८। १० बजेतक	१३ ”	**भद्रा** प्रात: ६। ३८ बजेसे रात्रिमें ७। ५० बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा दिनमें ९। ३ बजेतक	शनि	पू०भा० ” १०। ४७ बजेतक	१४ ”	**पूर्णिमा, महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध, मीनराशि** दिनमें ४। ९ बजेसे।

कृपानुभूति

गोमाता और हनुमान्‌जीकी भक्तिका सुफल

(१)

मैं पंजाब नेशनल बैंकका रिटायर्ड अधिकारी हूँ। कल्याण पत्रिका मैं किशोरावस्थासे पढ़ता आ रहा हूँ। यह घटना करीब २६ वर्ष पूर्वकी है। हमारे बैंककी बसफाटक ग्रामीण शाखामें श्रीकडुदास राणे दफ्तरीके पदपर था। कडुदास कुर्सीपर बैठा हुआ था, उसके ठीक ऊपर सीलिंग फैन चल रहा था, मैंने उससे कहा कि पोस्ट ऑफिस जाकर अपने बैंककी डाक ले आओ। वह जैसे-ही उठकर फाटकके बाहर हुआ कि सीलिंग फैन धड़ाम-से उसी कुर्सीके ऊपर गिर पड़ा। प्रभुकृपासे उसकी जान बच गयी।

(२)

कडुदाससे ही सम्बन्धित एक अन्य घटना है, भारतीय स्टेट बैंकको छोड़कर शेष बैंकोंमें करीब २० वर्ष पूर्व पेंशन नहीं मिलती थी। सन् १९९४-९५ ई० के करीब कर्मचारी यूनियनकी माँगपर बैंकने यह सरक्युलर निकाला कि जो कर्मचारी रिटायरमेन्टके बाद पेंशन लेना चाहें, वे ऐसा आवेदन लिखकर दें तथा जो पी०एफ० लेना चाहें, वे वैसा लिखकर दें।

श्रीकडुदासने पेंशनके बजाय पी०एफ० लेनेको स्वीकृतिपत्र लिखकर दे दिया; क्योंकि उसे यह नहीं मालूम था कि पेंशन लेनेमें बहुत फायदा है। अत: जब वह रिटायर हुआ तो उसे उसकी पी०एफ०की जमा राशि और बैंकद्वारा उतनी ही जमा की गयी राशि ब्याजसहित प्राप्त हो गयी।

उसके रिटायरमेन्टके बाद कर्मचारी यूनियनकी माँगपर बैंकने पुन: विकल्प दिया कि जो रिटायर्ड कर्मचारी पी०एफ० के बदले पेंशन लेना चाहें, वे ऐसा आवेदन लिखकर दें तथा उन्हें जो पी०एफ०की राशि बैंककी ओरसे मिली है, वह वापस जमा करवा दें। कडुदासने शाखा जाकर पेंशनके लिये आवेदन दिया और प्राप्त पी०एफ० की राशि जमा करवा दी, किंतु बैंक शाखा प्रबन्धकने निर्धारित अन्तिम दिनांकके बाद उसका आवेदन और राशि हेड ऑफिस भेजी। जिसके कारण हेड ऑफिसने उसका पेंशनका आवेदन निरस्त कर दिया। श्रीकडुदासने यूनियनके द्वारा प्रयास किया कि उसे पेंशन मिलनेका आवेदन स्वीकृत हो; क्योंकि इसमें उसकी कोई गलती नहीं है, किंतु बैंक मैनेजमेन्ट नहीं माना। तब कोर्टमें यूनियनने केस दर्ज करवाया। काफी समय बाद कोर्टने उसके पक्षमें निर्णय दिया, किंतु बैंक मैनेजमेन्टने फिर भी उसे पेंशन देना स्वीकार नहीं किया। इसके बाद यूनियन हाईकोर्टमें केस ले गयी। इस बीच काफी समय निकल गया और कडुदास काफी परेशान रहने लगा। वह मेरे पास सलाह लेने आया तो मैं उसे एक ब्राह्मण ज्योतिषीके पास ले गया, किंतु कडुदासको अपनी सही जन्मतिथि और समय ज्ञात नहीं था। अत: ज्योतिषीने उसके प्रश्न पूछनेके अनुसार उसे सलाह दी कि तुम प्रत्येक मंगलवारको गौमाताको घास खिलाया करो तथा मैंने उसे सलाह दी कि तुम प्रतिदिन हनुमानचालीसाके ग्यारह पाठ किया करो।

वह तदनुसार गौ-ग्रास देने लगा तथा हनुमान्‌जीके मन्दिर जाकर रोज हनुमानचालीसाके ग्यारह पाठ करने लगा। करीब एक वर्ष बाद इसका सुपरिणाम यह हुआ कि (१) हाईकोर्टने उसके पक्षमें निर्णय दिया और बैंक प्रबन्धकने अपना अड़ियल रवैया छोड़कर उसे उसकी रिटायरमेन्टकी तारीखसे पेंशनका एरियर दिया और अब उसे नियमित मासिक पेंशन मिल रही है। (२) उसे अप्रत्याशित रूपसे बगैर ज्यादा मेहनत किये ४,६०० रुपये मासिककी अन्य आय भी होने लगी, जिससे अब वह बहुत प्रसन्न है।

गौ-माता चलता-फिरता प्रत्यक्ष तीर्थ है, जिसमें तैंतीस करोड़ देवताओंका वास माना गया है तथा हनुमान्‌जी अष्ट सिद्धि और नौ निधिके दाता हैं। अत: मैंने कडुदासको पुन: सलाह दी कि यह सब इनकी कृपाका सुपरिणाम है, अत: तुम गौ-ग्रास देना और हनुमानचालीसाका ग्यारह पाठ करना चालू रखना और वह ऐसा ही कर रहा है।—**सुरेशचन्द्र महाजन**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गरीबके धनका रक्षक—ईश्वर

बात वर्ष १९८४-८५ की है, जब मैं भारतीय स्टेट बैंककी तत्कालीन एम०ए०सी०टी० (अब मेनिट) कॉलेज भोपाल शाखामें शाखा प्रबन्धकके पदपर कार्यरत था।

एक दिन कॉलेजके एक प्रोफेसर मेरे पास आये और लॉकरकी गहराई पूछने लगे। अन्दाजन मैंने उन्हें गहराई १८ इंच बता दी। वे कहने लगे कि मुझे लॉकरकी वास्तविक गहराई बतायें; क्योंकि मुझे उसमें कुछ Drawings (ड्राइंग्स) रखना है। अब समस्या खड़ी हुई कि कोई खाली पड़ा लॉकर खोलो और उसकी नाप लो। इतनेमें मुझे याद आया कि दो लॉकर सेफमें-से एक लॉकर टूटा पड़ा है, अतः खाली लॉकर खोलकर देखनेकी परेशानीसे बचे। मैंने बैंकके वॉचमैन श्री शाहीको एक रूलर लानेहेतु कहा, श्रीशाही रूलर लेने बैंक हालमें चले गये। प्रोफेसर साहब मेरी टेबलके पास बैठे थे। मेरी शुरूसे यह आदत रही है कि किसी भी ग्राहकको ज्यादा देर अपने पास बैठाकर नहीं रखता। रूलर आनेमें देर हो रही थी। इसी बीच मेरी सेफके ऊपर एक बड़ी फाइल वीकली एब्स्ट्रेक्टकी रखी दिखायी दी। उस फाइलको उठाया, गोल घुमाया और टूटे लॉकरमें डाल दिया। फाइल बीचमें ही रुक गयी। किंतु मैंने प्रोफसर साहबको कह दिया कि लॉकरकी गहराई १८ इंच है। वे चले गये। अब वाचमैन श्रीशाही रूलर लेकर आये तो रूलर टूटे लॉकरमें डाला। रूलर भी तीन-चौथाई करीब जाकर रुक गया और अन्दर रूलर लगनेसे घुँघरू-जैसी आवाज आयी तो मेरा माथा ठनका। किसीसे कुछ न बोल वाचमैनको बैंकद्वारा प्रदत्त टार्च लानेको कहा। टार्च आनेपर लॉकरमें टार्चकी लाइट डालकर देखा तो एक नीले रंगकी थैली पोटलीकी शक्लमें रखी हुई दिखायी दी। अब समझमें आया कि फाइल और रूलर बीचमें ही क्यों अटक गये थे। अब समस्या यह थी कि उस थैलीको निकालनेसे पहले पाँच व्यक्ति एकत्रितकर उनके सामने थैली लॉकरसे निकालना और उसमें जो-जो भी सामान, गहने आदि हों, उनके नाम तौलसहित सूची बनाकर पंचनामा बनाना और सूचीपर पाँच व्यक्तियोंके हस्ताक्षर लेकर पंचनामा बनाना। इसमें कम-से-कम एक व्यक्ति बैंकसे बाहरका भी होना चाहिये, ताकि किसीको शक-शुबहाकी गुंजाइश न रहे। अतः इस हेतु कॉलेजके एक प्रोफेसर श्रीसक्सेनाको बुलाकर समस्त सामान (गहनों)-की लिस्ट बनायी गयी। फिर उन्हें सीलकर शाखा प्रबन्धक एवं हेड कैशियरकी ज्वाइण्ट कस्टडीमें रखा गया।

इसके पश्चात् पूरा प्रकरण आंचलिक कार्यालय भोपालको सूचित किया गया। यह भी सूचित कर दिया गया कि टूटे हुए लॉकरके आस-पास ऊपर-नीचेके लॉकरवालोंसे जानकारी ली जा रही है कि लॉकरमें सामान बराबर है? ताकि यह पता लग सके कि यह थैली कौन-से लॉकर होल्डरकी है।

आसपासके सभी लॉकर होल्डर्सको मौखिक सूचना देकर बैंकमें बुलवाया गया। उन्हें अपना समाान चेक करनेको कहा गया। सबने कहा कि उनका सामान सही है। इसमें करीब एक माह लग गया। इस प्रक्रियामें टूटे लॉकरके ऊपरवाले लॉकरकी धारक श्रीमती रामकलीबाई अथवा रामकन्याबाई तीन-चार बार याद दिलानेपर भी लॉकर चेक करने नहीं आयीं। कारण कि वह महिला एम०ए०सी०टी० स्टाफके क्वार्टर्समें बर्तन माँजने तथा सफाई आदिका काम करती थी। अतः बार-बार बोलनेपर एक दिन वह महिला भी आयी। मैंने उससे पूछा—लॉकर कबसे नहीं खोला है? उसने कहा—एक-डेढ़ सालसे नहीं खोला। मैंने कहा कि ६-८ महीनोंमें आकर अपना लाकर चेक कर लेना चाहिये तो उस महिलाने भी हामी भरी। तब उसे अपना लॉकर चेक करनेको कहा। मैं अपनी मास्टर-की लगाकर अपनी सीटपर आकर बैठ गया और जो बैंक कर्मचारी उस महिलासे काफी समयसे परिचित था, उनको अपने पास बुलाकर बैठा लिया। महिलाने जैसे ही लॉकर खोला, उसने

रोना-चिल्लाना चालू कर दिया—'मैं मर गयी रे, मैं तो लुट गयी रे' आदि तब उस परिचित कर्मचारीको लॉकर-रूममें भेजकर महिलासे लॉकर बन्द करवाकर उसे अपने पास बुलवा लिया और उससे पूछा कि तुम्हारे गहनोंमें क्या-क्या है, तुम्हें याद है? तो उस अनपढ़ महिलाने (जिसकी एक आँखमें फूला था, जिससे साफ दिखायी भी नहीं पड़ता था) एक-एक गहनेका नाम चाँदी-सोना धातु आदिका बताया जो गिनतीमें करीब १२-१३ गहने थे, जिसमें सोनेका वजन करीब २०-२५ तोले और चाँदीका वजन एक-से-डेढ़ किलो होगा, सभी व्यवस्थित बता दिये। यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि महिला रीवा, मध्यप्रदेशकी रहनेवाली थी और एकदम अनपढ़ तथा विधवा थी। वह काफी समयसे भोपालमें रहते हुए मजदूरीकर अपना पेट पाल रही थी।

अब मेरा अगला प्रश्न था कि ये गहने तुमने किसी दूकानदारसे खरीदे होंगे या सुनारसे बनवाये होंगे तो उनके कोई बिल या रसीद तुम्हारे पास हैं? उसने कहा—देखूँगी। मैंने उसे आश्वासन दिया कि तुम्हारे गहने बैंकमें सुरक्षित हैं। तुम इन गहनोंकी बिल-रसीद लाकर दे दो। एक महीनेमें तुम्हारा सामान मिल जायगा। बड़े आश्चर्यके साथ कहना पड़ता है कि तीन-चार दिनमें ही उस महिलाने सभी १२-१३ गहनोंके बिल-रसीदें रीवा ज्वेलर्सकी लाकर मुझे सौंप दी। आज भी हम पढ़े-लिखे लोग बिल-रसीद आदि कोई सामान खरीदते वक्त नहीं लेते और लेते हैं तो इधर-उधर फेंक देते हैं, जो जरूरत पड़नेपर मिलते नहीं।

अब मेरा काम काफी आसान हो गया था। गहनोंका असली हकदार प्रमाणके सहित मिल गया था। उस आधारपर आंचलिक कार्यालय, भोपालको पत्र लिखकर स्वीकृति माँगी। आवश्यक दस्तावेज तैयारकर स्वीकृतिहेतु भेजे गये। शीघ्र स्वीकृति प्राप्त हो गयी। उस गरीब, अनपढ़ महिलाके गहने टूटे लॉकरमें असुरक्षित एक वर्षसे अधिक समयतक पड़े रहे, किंतु उसका भाग्य अच्छा था कि किसी दूसरे लॉकर होल्डरका ध्यान उस तरफ गया नहीं और गहने सुरक्षित पड़े रहे। इससे बैंककी भी साख बढ़ी और हम स्टॉफके सदस्योंने भी ईश्वरका धन्यवाद माना कि गरीबका धन उसके सही मालिकतक पहुँच गया। अतः यह कहा जा सकता है कि गरीबके धनका रक्षक ईश्वर होता है।

—रवीन्द्र व्यास

(२)

सच्चे मनकी पुकार

यह घटना आजसे लगभग ३५ वर्ष पूर्वकी है। हमारा गाँव चाँदनी उत्तरप्रदेशमें बुन्देलखण्डके जिला जालौनकी तहसील कौंचके दक्षिण दिशामें स्थित है। जालौन जिला दिल्लीपति महाराज पृथ्वीराज चौहान और महोबाके वीर चन्देल राजा परमारके बीच (वैरागण) युद्धके लिये जाना जाता है, जहाँ आल्हा-ऊदलकी वीर-गाथाएँ आज भी सुर-तालमें गायी जाती हैं। आषाढ़ मासका उत्तरार्ध चल रहा था आसमानमें बादलोंका नामोनिशान दूर-दूरतक दिखायी नहीं दे रहा था। अतः सूखा पड़ना निश्चित हो रहा था। हम सब ग्रामवासी सूखेकी भयावहताकी कल्पनामात्रसे चिन्तित थे। एक दिन हमारे रिश्तेमें चाचा लगनेवाले एक सम्भ्रान्त सज्जनने पानी बरसानेके लिये २४ घंटेके अखण्ड कीर्तनके आयोजनका प्रस्ताव रखा। इसके लिये मैं और लगभग सभी ग्रामवासी सहमत हो गये और गाँवके प्राचीन रामजानकी मन्दिरमें 'हरे राम हरे कृष्ण' की मधुर ध्वनि सुनायी देने लगी। प्रभुकृपासे गाँवके सभी लोगोंने इस पावन-कार्यमें सच्चे मनसे भाग लिया, जिससे यह कीर्तन-ध्वनि चौबीस घंटेकी जगह १२ दिनतक सतत चलती रही, लेकिन बादलोंका नामोनिशान भी नहीं था। अतः कार्यक्रमको समाप्त करनेका निर्णय लिया गया। समापन कार्यक्रममें नगरफेरीका आयोजन किया गया। इस नगरफेरीमें गाँवके लगभग सभी बूढ़े-बच्चों, बहू-बेटियोंने जाति-पाँति भुलाकर एकमन एकरस होकर जब इस ध्वनिसे ब्रह्माण्डको गुंजायमान किया तो इस भावका ऐसा प्रभाव हुआ कि नगरके आखिरी देवस्थान (हनुमान्‌जी)-पर जब भोग-आरती सम्पन्न

की जा रही थी तो न जाने कहाँसे आसमानमें मेघोंका पदार्पण हुआ और देखते-ही-देखते वे सघन होकर मूसलाधार वर्षा करने लगे। उस वर्षाने सभी भक्तोंको निर्मल जलसे सराबोर कर दिया एवं भारी बारिशसे आसपासके सर-सरोवर भर गये। इस घटनाके बारेमें मुझे इतना ही कहना है कि भगवान्ने हम गाँववालोंके अन्तर्मनकी पुकारका फल देकर मनोकामना पूर्ण की, ऐसा मेरा विश्वास है।—**भानुप्रकाश निरंजन (वकील साहब)**

(३)

सर्पविषहन्ता भयहरण बाबा

मैं सन्ताल परगना (प्रमण्डल)-के दुमका मण्डलमें अवस्थित धौनी गाँवका मूल निवासी हूँ। प्रसिद्ध शिवधाम वासुकिनाथसे यह गाँव लगभग दस किलोमीटर दूर पश्चिम दिशामें है। यहाँ भी एक शिवधाम है—नाम है शुम्भेश्वरनाथधाम। कहते हैं, इस शिवधाममें स्थित शिवलिंगको शुम्भ नामक दैत्यने स्थापित किया था, ऐसी मान्यता है। इस शिवमन्दिरमें जो शिवलिंग है, वह बीचसे फटा हुआ है। कहते हैं, पुराकालमें सन्ताल-विद्रोहके अवसरपर किसी विद्रोही सन्तालने शिवलिंगपर कुदालसे प्रहार कर दिया था। इसीसे वह फट गया।

इसी गाँवसे उत्तर लगभग दो-तीन किलोमीटर दूर 'ककनी' नामका एक गाँव है। इस गाँवमें एक ब्राह्मण परिवारके घरमें भयहरण बाबाकी पिण्डी है। इस पिण्डीरूपी बाबाकी विशेषता है कि इसपर डाला गया जल, जिसे लोग 'नीर' कहते हैं, पीनेसे सर्पविषका निवारण हो जाता है।

एक बार मेरे पिताजी विषधर सर्पके फुफकारके शिकार हो गये। उन्हें मिचली आने लगी और सिर चकराने लगा। पिताजीको तत्क्षण मेरे बड़े पिताजी, जो ज्योतिष तथा धर्मशास्त्रके प्रकाण्ड पण्डित थे, अपने साथ लेकर ककनी गाँवमें भयहरण बाबाके मण्डपमें पहुँच गये। वहाँ उन बाबाके पुजारीने पिताजीको भयहरण बाबा का 'नीर' पिलाया। नीरके प्रभावसे मेरे पिताजी स्वस्थ हो गये और अपने घर लौट आये।

भयहरण बाबाके नीरका प्रभाव या प्रताप अथवा उनकी कृपाका चमत्कार है कि सर्पविषसे मूर्च्छित व्यक्तिकी भी चेतना लौट आती है और वह स्वयं चलकर अपने घर वापस चला जाता है।

—**श्रीरंजन सूरिदेव**

(४)

कुछ अनुभूत प्रयोग

(१) फोड़ा-फुंसी—कहीं कैसा भी फोड़ा-फुंसी हो, इस प्रयोगसे या तो वह बैठ जायगा या पककर फूट जायगा, घाव जल्दी भरकर साफ हो जायगा।

प्रयोग—पाँच तोले करंजके तेलमें एक मासा डलीका असली कपूर पीसकर मिला दे और हिलाकर शीशीमें भरकर रख दे। फोड़े-फुंसीपर अँगुलीसे लगा दे और रूईपर मामूली तेल लगाकर पट्टी बाँध दे। सुबह-शाम दोनों समय गरम जलसे धोना चाहिये।

(२) दमा (श्वास)—(क) खानेका नमक सुनारकी कुठालीमें पकाकर रख ले और उसमेंसे मकईके दानेके बराबर बिना कत्थे-चूनेके पानमें डालकर प्रतिदिन दिनमें तीन बार खा ले। रातको सोते समय अवश्य खाये।

(ख) रातको सोते समय आधी सुपारीके बराबर पीसा हुआ काला नमक जलके साथ खानेसे भी दमाके रोगमें लाभ होता है।

(३) कानका दर्द—गुलाबका असली इत्र दो बूँद कानमें डालकर हिला देना चाहिये।

(४) कानमें फुंसी—बबूलके पके हुए दो-चार फूल लाकर उन्हें कानके अन्दर गिराना चाहिये और उसका बुरादा फुंसीपर लगा देना चाहिये।

—**चिरंजीलाल जाजोदिया**

खूनी बवासीर—रसौत एक तोला और कलमी सोरा एक तोला—दोनोंको पानीमें खूब महीन पीसकर आठ-आठ आनेभरकी गोली बना ले। एक गोली प्रात:काल और एक सन्ध्याको ठण्डे जलके साथ खिला दे। यह दो दिनोंकी दवा है। इसीसे खून बन्द हो जायगा। न हो तो, दो दिन इसी प्रकार और दे दे। गुड़, लाल मिर्च, खटाई, तेल कतई न खाये।—**बंसीधर अग्रवाल**

मनन करने योग्य

बड़ोंकी हँसी उड़ानेका दुष्परिणाम

एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनमें ब्रह्माजी शिवजीके पास बैठे थे। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर फल था। जो देवर्षिने उमानाथके कर-कमलोंमें अर्पित कर दिया।

फलको पिताके हाथमें देखकर गणेश और कुमार दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे। तब शिवने ब्रह्माजीने पूछा—'ब्रह्मन्! फल एक ही है और इसे गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं; आप बतायें, इसे किसे दूँ?'

चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे होनेके कारण इस एकमात्र फलके अधिकारी तो षडानन ही हैं।'

गंगाधरने फल कुमारको दे दिया। किंतु पार्वतीनन्दन गणेश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हो गये।

लोकपितामहने अपने भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका प्रयत्न किया तो गजवक्त्रने अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया। वे अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट हुए। विघ्नेश्वरके भयानकतम स्वरूपको देखकर विधाता भयभीत होकर काँपने लगे।

गजाननकी विकट मूर्ति एवं ब्रह्माका भय और कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणोंके साथ हँस पड़े।

चन्द्रमाको हँसते देख गजमुखको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चन्द्रदेवको तुरंत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखनेयोग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसीने तुम्हें देख लिया तो वह पापका भागी होगा।

अब तो चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त दु:खित हो गये।

सुधाकरके अदर्शनसे देवगण भी दु:खित हुए। अग्नि और इन्द्र आदि देवगण देवदेव गजाननके समीप पहुँचकर उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

देवताओंके स्तवनसे प्रसन्न होकर गजमुखने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे सन्तुष्ट हूँ। वर माँगो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

देवता बोले—'प्रभो! आप चन्द्रमापर अनुग्रह करें, हमारी यही कामना है।'

गणेशजीने कहा—'देवताओ! मैं अपना वचन मिथ्या कैसे कर दूँ? पर शरणागतका त्याग भी सम्भव नहीं।' अत: तुम लोग मेरी बात सुनो—

'जो जानकर या अनजानमें ही भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्रका दर्शन करेगा, वह अभिशप्त होगा। उसे अधिक दु:ख उठाना पड़ेगा।'

परमप्रभु द्विरदाननके वचन सुन देवगण अत्यन्त मुदित हुए। उन्होंने पुन: प्रभु-चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर वे चन्द्रमाके पास पहुँचे और उनसे कहा—'चन्द्र! गजमुखपर हँसकर तुमने अपनी मूढ़ताका ही परिचय दिया है। तुमने परम प्रभुका अपराध किया और त्रैलोक्य संकटग्रस्त हो गया। हम लोगोंने त्रैलोक्यनायक परब्रह्मस्वरूप सर्वगुरु गजानन प्रभुको बड़े यत्नसे सन्तुष्ट किया। इस कारण उन दयामयने तुम्हें वर्षमें केवल एक दिन भाद्र-शुक्ल-चतुर्थीको अदर्शनीय रहनेका वचन देकर अपना शाप अत्यन्त सीमित कर दिया। तुम भी उन करुणामयकी शरण लो और उनकी कृपासे शुद्ध होकर यश प्राप्त करो।'

देवेन्द्रने सुधांशुको गजाननके एकाक्षरी मन्त्रका उपदेश किया और फिर देवगण वहाँसे चले गये।

सुधाकर शुद्ध हृदयसे परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर गजाननका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरीमन्त्रका जप करने लगे। चन्द्रदेवने गणेशको सन्तुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए और उन परम प्रभु गजाननके वर-प्रभावसे सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये।

इस तरह यह पौराणिक घटना यह सन्देश देती है कि अपनेसे बड़ोंका उपहास करना अमंगलकारी होता है। **[गणेशपुराण, उपासनाखण्ड]**